पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

सविता मंडल

बनाम

नक्षत्र कुमार मंडल

2017 की विविध अपील सं. 114

25 अगस्त, 2023

(माननीय न्यायमूर्ति पी. बी. भजंत्री तथा माननीय न्यायमूर्ति जितेन्द्र कुमार)

विचार के लिए मुद्दा

क्या अपीलकर्ता के पास तलाक याचिका दायर करने का वैध कारण-कार्य था; क्या अपीलकर्ता ने प्रतिवादी द्वारा की गई क्रूरता और परित्याग को तलाक डिक्री प्राप्त करने हेतु सिद्ध किया।

हेडनोट्स

परिवार न्यायालय के समक्ष याचिका में पति द्वारा वादी-पत्नी के साथ कथित क्रूरता किए जाने तथा पति द्वारा पत्नी को त्याग देने का उल्लेख किया गया है। दो नाबालिग बच्चों की अभिरक्षा के अधिकार के संबंध में भी कथन किया गया है। परिवार न्यायालय ने गलत रूप से यह पाया कि पत्नी ने तलाक तथा नाबालिग बच्चों की अभिरक्षा हेतु याचिका दायर करने का कारण-कार्रवाई प्रस्तुत नहीं किया। (अनुच्छेद 26)

प्रतिवादी-पति के विरुद्ध क्रूरता का आरोप अस्पष्ट और सामान्य प्रकृति का है। उसके पुलिस कांस्टेबल के रूप में नियुक्त होने से पूर्व पति के विरुद्ध किसी भी प्रकार का आरोप नहीं था। उसके बाद पति द्वारा क्रूरता किए जाने का कोई अवसर ही नहीं था क्योंकि उसने पति को अपने साथ रहने की अनुमति नहीं दी। और जब दोनों पक्ष लगभग दो वर्षों तक साथ रहे, उस अवधि में भी क्रूरता का कोई आरोप नहीं लगाया गया। (अनुच्छेद 66)

पत्नी ने हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना के लिए कोई याचिका भी दाखिल नहीं की। यह तथ्य उसके विरुद्ध जाता है और पति के इस कथन को पुष्ट करता है कि वह विवाह जारी नहीं रखना चाहती और केवल तलाक का डिक्री प्राप्त करने के उद्देश्य से झूठा आरोप लगाया है। – पत्नी की ओर से न तो किसी अभ्यावेदन में और न ही साक्ष्य में यह विशेष उल्लेख है कि पति ने कब उसे त्यागा। (अनुच्छेद 77)

वर्तमान अपील में कोई सार्थकता नहीं है। (अनुच्छेद 81)

न्याय दृष्टान्त

मेयर (एच.के.) लिमिटेड बनाम ओनर्स एंड पार्टीज़, वेसल एम.वी. फॉर्च्यून, (2006) 3 एस.सी.सी. 100; आई.टी.सी. लिमिटेड बनाम डेब्ट्स रिकवरी अपीलीय अधिकरण, (1998) 2 एस.सी.सी. 70; टी. अरिवंदानंदम बनाम टी.वी. सत्यपाल, (1977) 4 एस.सी.सी. 467; डॉ. नारायण गणेश दास्ताने बनाम सुचेता नारायण दास्ताने, (1975) 2 एस.सी.सी. 326; शोभा रानी बनाम मधुकर रेड्डी, ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 121; ए. जयचंद्र बनाम अनील कौर, (2005) 2 एस.सी.सी. 22; समर घोष बनाम जया घोष, (2007) 4 एस.सी.सी. 511; गणनाथ पात्रनायक बनाम स्टेट ऑफ उड़ीसा, (2002) 2 एस.सी.सी. 619; मोहनदास पनिकर बनाम दक्षायनी, 2013 एस.सी.सी. ऑनलाइन केर 24493; हरभजन सिंह मोंगा बनाम अमरजीत कौर, 1985 एस.सी.सी. ऑनलाइन एम.पी. 83; उमा वंती बनाम अर्जन देव, 1995 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी. एंड एच. 56; रीता निजहावन बनाम बल कृष्ण निजहावन, आई.एल.आर. (1973) । दिल्ली 944; रवि कुमार बनाम जुमला देवी, 2010 एस.सी.सी.आर. 265; रामचंदर बनाम अनंता, 2015 (11) एस.सी.सी. 539; विनिता सक्सेना बनाम पंकज पंडित, (2006) 3 एस.सी.सी. 778; बिपिनचंद्र जयहिंगभाई शाह बनाम प्रभावती, ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 176; लछमन उत्तमचंद किर्पलानी बनाम मीना, ए.आई.आर.

1964 एस.सी. 40; सवित्री पांडेय बनाम प्रेम चंद्र पांडेय, 2002 (2) एस.सी.सी. 73; देबानंदा तामुली बनाम काकुमोनी कटक्य, (2022) 5 एस.सी.सी. 459

अधिनियमों की सूची

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955; हिंदू अल्पसंख्यक और अभिभावक अधिनियम, 1956; अभिभावक और वार्ड अधिनियम, 1890; दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908; भारतीय दंड संहिता, 1860

मुख्य शब्दों की सूची

तलाक; क्रूरता; परित्याग; बच्चों की अभिरक्षा; कारण-कार्य; प्रासंगिकता; संभावनाओं का प्राधान्य; दहेज की मांग

प्रकरण से उत्पन्न

दिनांक 12.01.2017 को पारित माननीय अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, कटिहार का निर्णय, वैवाहिक (तलाक) मामला संख्या 413/2013 से।

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

अपीलकर्ता की ओर से: श्री मुकेश कुमार झा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से: श्री जिबेन्द्र मिश्रा, अधिवक्ता

रिपोर्टर द्वारा हेडनोट बनाया गया:
अमित कुमार मल्लिक, अधिवक्ता

माननीय पटना उच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

2017 की विविध अपील सं. 114

= == =

सविता मंडल, पति- नक्षत्र कुमार मंडल, पिता- पटल सहनी, निवास- पुलिस लाइन, कटिहार, थाना और जिला कटिहार

...... अपीलकर्ता/वादी

बनाम

नक्षत्र कुमार मंडल, पिता- द्वारिका प्रसाद सिंह, निवास- गाँव- वाशुपुर, मजदिया, डाकघर- देवीपुर, थाना- कुरसेला, जिला कटिहार

...... उत्तरदाता/प्रतिवादी

= == =

उपस्थिति:

अपीलार्थी/ओं के लिए : श्री मुकेश कुमार झा, अधिवक्ता

उत्तरदाता/ओं के लिए : श्री जिबेंद्र मिश्रा, अधिवक्ता

= == =

समक्षः माननीय न्यायमूर्ति श्री पी.बी. भजंत्री

और

माननीय न्यायमूर्ति श्री जितेंद्र कुमार

सीएवी निर्णय

(प्रतिः माननीय न्यायमूर्ति श्री जितेंद्र कुमार)

दिनांक: 25-08-2023

वर्तमान अपील, कटिहार के विद्वान अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय द्वारा दिनांक 12.01.2017 को पारित निर्णय को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जो वर्ष 2013 में विवाह विषयक (तलाक) वाद संख्या 413 में पारित किया गया था। यह याचिका हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(I-बी) के तहत तलाक और

वैवाहिक संबंध से उत्पन्न दो नाबालिग बच्चों की अभिरक्षा के लिए दायर की गई थी। हालांकि, याचिका को प्रतिवाद के बाद खारिज कर दिया गया।

2. अपीलकर्ता-वादी का मामला, जैसा कि याचिका में उल्लेखित है, के अनुसार, अपीलकर्ता-वादी और उत्तरदाता-प्रतिवादी के बीच विवाह दिनांक 25.09.1998 को हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार संपन्न हुआ था। विवाह के बाद, अपीलकर्ता-पत्नी उत्तरदाता-पति के दांपत्य निवास में रहने लगी। यह भी याचिका में उल्लेखित है कि विवाह के समय, उत्तरदाता-पति को विवाह के खर्च के लिए 1.5 लाख रुपये नकद विवाह के खर्च के अलावे भव्य-उपहार दिए गए थे। विवाह के बाद दोनों पक्षों के बीच वैवाहिक जीवन सौहार्दपूर्ण रहा और इस विवाह से दो पुत्र प्रियांशु कुमार और साकेत कुमार का जन्म हुआ, जो तलाक याचिका दायर करने के समय क्रमशः 12 वर्ष और 10 वर्ष के थे। यह भी याचिका में उल्लेखित है कि छोटे पुत्र के जन्म के बाद उत्तरदाता-पति ने उसी गांव की एक अन्य महिला के साथ निकटता विकसित की और वह उसके साथ व्यभिचारी जीवन जी रहा था। यह भी याचिका में कहा गया है कि जब वह अपने पति के साथ रह रही थी तब दहेज और आभूषणों की अपर्याप्तता की शिकायत की गई, जिसके कारण उसे शारीरिक और मानसिक क्रूरता का सामना करना पड़ा। अंततः, उसके सामान और आभूषणों को रखकर उसे दांपत्य निवास से निकाल दिया गया। यह भी याचिका में उल्लेखित है कि उत्तरदाता-पति के दुर्व्यवहार और व्यभिचारी जीवन के कारण अपीलकर्ता-वादी को बच्चों के साथ उत्तरदाता-पति और उसके परिवार के साथ रहना असहज लगा। यह भी याचिका में कहा गया है कि अपीलकर्ता-वादी ने जिला पुलिस में मासिक वेतन पर नौकरी शुरू की और उसे अपनी तैनाती के विभिन्न स्थानों पर होने के कारण उत्तरदाता-पति से मिलने के लिए कम समय मिलता था। यह भी याचिका में उल्लेखित है कि प्रत्येक माह के अंत में उत्तरदाता-पति उसकी तैनाती के स्थान पर जाकर धमकी और दबाव के तहत उसका वेतन ले लेता था, जिससे अपीलकर्ता-वादी को आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता था। याचिका में यह भी कहा गया है कि

दोनों नाबालिग पुत्र उत्तरदाता-पति के साथ बेहतर संरक्षण और शैक्षणिक कैरियर के बहाने रह रहे हैं, लेकिन विश्वसनीय जानकारी के अनुसार, उन्हें उत्तरदाता-पति द्वारा दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ रहा है। जैसा कि अपीलकर्ता-वादी को सरकारी आवास प्राप्त है, इसलिए वह अपने बच्चों के शैक्षणिक कैरियर को बनाए रखने में सक्षम है। अपीलकर्ता-वादी को उत्तरदाता-पति की ओर से किसी अनहोनी की आशंका है। इसलिए, अपीलकर्ता-वादी अब उत्तरदाता-पति के साथ वैवाहिक संबंध को आगे बढ़ाने के लिए तैयार नहीं है। यह भी याचिका में उल्लेखित है कि उत्तरदाता-पति और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा दुर्व्यवहार के कारण, अपीलकर्ता-वादी ने कटिहार के विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष आपराधिक मामले में वर्ष 2013 में शिकायत संख्या 203 दर्ज किया है। यह भी याचिका में कहा गया है कि उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपीलकर्ता-वादी का उत्तरदाता-पति के साथ वैवाहिक जीवन बहुत तनावपूर्ण था और उत्तरदाता-पति पर वैवाहिक संबंध को आगे बढ़ाने के लिए कोई भरोसा नहीं किया जा सकता था, अतः उसने हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(I-बी) के तहत तलाक की प्रार्थना के साथ यह याचिका दायर की है।

3. सूचना मिलने पर उत्तरदाता-प्रतिवादी पति ने उपस्थित होकर अपना लिखित बयान दाखिल किया, जिसमें उसने दावा किया कि विवाह विषयक याचिका जैसी तैयार की गई है, वह बनाए रखने योग्य नहीं है। उसने यह भी दावा किया कि अपीलकर्ता-वादी ने तलाक के आदेश के लिए कोई वैधानिक आधार नहीं बताया है। उसने अपीलकर्ता-वादी के साथ अपने विवाह को स्वीकार किया, लेकिन दहेज की मांग के आरोप को खारिज किया। यह भी दावा किया गया कि वैवाहिक जीवन सौहार्दपूर्ण था और इस विवाह से दो बच्चों का जन्म हुआ। यह भी दावा किया गया कि उत्तरदाता-पति ने अपीलकर्ता-पत्नी को शिक्षित किया और उसे बिहार पुलिस में महिला सिपाही के पद पर चयन के योग्य बनाया। उसने क्रूरता, दहेज की मांग या व्यभिचारी जीवन के सभी आरोपों को खारिज किया। यह भी

दावा किया गया कि बिहार पुलिस में चयन के बाद अपीलकर्ता-वादी आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो गई और उसने उत्तरदाता-पति और उसके परिवार के प्रति तिरस्कार विकसित कर लिया। उसने यह भी कहा कि विभिन्न प्रकार की छुट्टियों का लाभ उठाकर वह अपने बच्चों और पति से मिलकर वैवाहिक और पारिवारिक जीवन को ठीक रख सकती थी। उसने यह भी खारिज किया कि उसने कभी अपीलकर्ता-वादी का वेतन छीना। यह भी दावा किया गया कि अपीलकर्ता-वादी स्वार्थी है और उसे अपने बच्चों के प्रति कोई स्नेह या देखभाल नहीं करती है और वह उनके शिक्षा और कल्याण पर कोई खर्च नहीं करती। यह उत्तरदाता-पति ही है, जो बच्चों की देखभाल करता है और उनकी उचित शिक्षा के लिए सभी प्रयास करता है। यह भी दावा किया गया कि स्वतंत्र रूप से धन कमाने के कारण अपीलकर्ता-वादी पत्नी उत्तरदाता-पति से छुटकारा पाना चाहती है। यह भी दावा किया गया कि झूठा आपराधिक मामला दायर करके वह तलाक की आदेश के लिए गलत साक्ष्य जुटा रही है।

4. दोनों पक्षों की याचिकाओं के आधार पर, विद्वान परिवार न्यायालय ने निम्नलिखित मुद्दों को तैयार किया:-

i. क्या याचिका जैसी तैयार की गई है, वह बनाए रखने योग्य है।

ii. क्या याचिकाकर्ता के पास याचिका दायर करने का वैध कारण है।

iii. क्या याचिकाकर्ता के पास अपने पति (उत्तरदाता) की संगति छोड़ने का उचित बहाना है।

iv. क्या याचिकाकर्ता को दहेज की मांग पूरी न करने के कारण दुर्व्यवहार और क्रूरता का सामना करना पड़ा।

v. क्या याचिकाकर्ता दोनों पुत्रों, जो वर्तमान में उत्तरदाता-प्रतिवादी के साथ रह रहे हैं, की अभिरक्षा पाने का हकदार है।

vi. क्या याचिकाकर्ता तलाक की आदेश के लिए हकदार है।

vii. क्या याचिकाकर्ता किसी अन्य राहत या राहतों के लिए हकदार है।

5. विचारण के दौरान, अपीलकर्ता-वादी ने निम्नलिखित साक्षियों की जांच की:-

i. अ. सा.-1, सविता मंडल, अपीलकर्ता।

ii. अ. सा.-2, शीला देवी, अपीलकर्ता की माता।

iii. अ. सा.-3, पटेल साहनी, अपीलकर्ता के पिता

6. हालांकि, अपीलकर्ता-वादी द्वारा कोई दस्तावेज प्रदर्शित नहीं किया गया।

7. (i) सविता देवी, अपीलकर्ता-वादी, को अ. सा.-1 के रूप में जांचा गया। अपने मुख्य परीक्षण में, उन्होंने तलाक के लिए दायर याचिका में किए गए बयानों को दोहराया। अपनी जिरह में, उन्होंने बयान दिया कि वह अपने बच्चों की देखभाल अपने पति के साथ मिलकर करती थी। उन्होंने आगे कहा कि उनका पहला बच्चा विवाह के दो वर्ष बाद और दूसरा पुत्र चार वर्ष बाद पैदा हुआ। उन्होंने यह भी कहा कि वह अपने पति के साथ नहीं रहना चाहती क्योंकि वह उन्हें मारता था। उन्होंने अपने पति के खिलाफ भा.दं.वि. की धारा 498 ए के तहत अपराध के लिए एक आपराधिक मामला भी दर्ज किया है।

7. (ii) शीला देवी, जो अपीलकर्ता-वादी की माता हैं, को अ. सा.-2 के रूप में जांचा गया। अपने मुख्य परीक्षण में, उन्होंने अपीलकर्ता-वादी द्वारा तलाक के लिए दायर याचिका में किए गए बयानों को दोहराया। अपनी जिरह में, उन्होंने बयान दिया कि अपीलकर्ता-वादी का बिहार पुलिस में चयन वर्ष 2007 में हुआ और उनकी पहली तैनाती सुपौल में थी, जहां उनके

बच्चे उनके साथ रहते थे। उन्होंने आगे कहा कि सुपौल में अपीलकर्ता-वादी और उत्तरदाता-प्रतिवादी के बीच झगड़ा होता था, हालांकि वह घटना की सटीक तारीख नहीं बता पायी। उन्होंने यह भी कहा कि अपीलकर्ता-वादी के दोनों बच्चे अपने पिता के साथ रह रहे हैं और अब अपीलकर्ता-वादी ने बच्चों की अभिरक्षा के लिए भी आवेदन किया है। उन्होंने यह भी बयान दिया कि उन्हें नहीं पता कि उत्तरदाता-प्रतिवादी का किसी के साथ अवैध संबंध है।

7. (iii) पटेल साहनी, जो अपीलकर्ता-वादी के पिता हैं, को अ. सा.-3 के रूप में जांचा गया। अपने मुख्य परीक्षण में, उन्होंने अपीलकर्ता-वादी द्वारा तलाक के लिए दायर याचिका में किए गए बयानों को दोहराया, हालांकि जिरह के दौरान इस गवाह द्वारा कोई महत्वपूर्ण बयान नहीं दिया गया।

7. (iv) धर्मेंद्र कुमार, जो दोनों पक्षों से परिचित हैं, को अ. सा.-4 के रूप में जांचा गया। अपने मुख्य परीक्षण में उन्होंने भी अपीलकर्ता-वादी द्वारा तलाक के लिए दायर याचिका में किए गए बयानों को दोहराया, लेकिन जिरह के दौरान इस गवाह द्वारा कोई महत्वपूर्ण बयान नहीं दिया गया।

8. उत्तरदाता-प्रतिवादी ने निम्नलिखित चार साक्षियों की जांच की:-

i. व.सा.-1, साकेत कुमार, उत्तरदाता-प्रतिवादी का पुत्र।

ii. व.सा.-2, प्रियांशु कुमार, उत्तरदाता-प्रतिवादी का पुत्र।

iii. व.सा.-3, प्रमोद कुमार, उत्तरदाता-प्रतिवादी के गांव का निवासी।

iv. व.सा.-4, नक्षत्र कुमार, उत्तरदाता-प्रतिवादी।

9. हालांकि, उनकी ओर से भी कोई दस्तावेज प्रदर्शित नहीं किया गया।

10. (i) साकेत कुमार, जो उत्तरदाता-प्रतिवादी का बड़ा पुत्र है, को व. सा.-1 के रूप में जांचा गया। अपने मुख्य परीक्षण में उन्होंने बयान दिया कि उनकी मां ने उन्हें

निकाल दिया था और तब से वह अपने पिता के साथ रह रहे हैं। उनकी मां सरकारी नौकरी में हैं और सरकारी नौकरी में आने के बाद उनका व्यवहार उनके और उनके भाई तथा पिता के प्रति बदल गया और वह उन्हें तुच्छ समझने लगीं। वह उन्हें यातना देती थीं और झूठे आरोप लगाकर स्वयं को उनसे अलग कर लिया। शुरू में अपीलकर्ता-वादी के बिहार पुलिस में नियुक्त होने के बाद वह अपने भाई और पिता के साथ अपनी मां के साथ रहते थे, लेकिन इसके बाद एक वर्ष बाद से वह अपने भाई और पिता के साथ अपनी मां से अलग रह रहे हैं। इससे पहले, जब भी उनका पिता उनकी मां से मिलने जाता था, उनकी मां अन्य पुलिस सिपाहियों की सहायता से उसे अपमानित करती थी। उन्होंने आगे बयान दिया कि उनके पिता के पास कोई भूमि नहीं है और वह मजदूरी करके उनका पालन-पोषण करते हैं, जबकि उनकी मां 30,000 रुपये प्रति माह कमाती हैं। उन्होंने यह भी कहा कि उनकी मां उनके साथ नहीं रहना चाहतीं, जबकि उनके पिता उनके और उनके भाई के साथ अपनी मां के साथ रहना चाहते हैं। उन्होंने आगे कहा कि यदि उनकी मां को तलाक मिल गया तो वे अनाथ हो जाएंगे और उनका भविष्य बर्बाद हो जाएगा। उनकी मां का बयान पूरी तरह से झूठा है। अपनी जिरह में, उन्होंने आगे बयान दिया कि उनके पिता उनकी और उनके भाई की बहुत अच्छे से देखभाल करते हैं और उन्हें प्यार और स्नेह के साथ रखते हैं और उनकी सभी जरूरतों को पूरा करते हैं, जिसमें शैक्षिणिक शुल्क भी शामिल है। हालांकि, इस गवाह द्वारा और कोई महत्वपूर्ण बयान नहीं दिया गया।

10. (ii) प्रियांशु कुमार, जो उत्तरदाता-प्रतिवादी का छोटा पुत्र है, को व. सा.-2 के रूप में जांचा गया। अपने मुख्य परीक्षण में, उन्होंने अपने भाई साकेत कुमार द्वारा दिए गए बयानों को दोहराया। अपनी जिरह में, उन्होंने बयान दिया कि उनके पिता बेरोजगार हैं और कुछ छात्रों को ट्यूशन देते हैं, जबकि उनकी मां 30,000 रुपये प्रति माह कमाती हैं। उन्होंने आगे कहा कि भले ही उनकी मां उन्हें रखने के लिए तैयार हो जाएं, वह उनके साथ नहीं जाएंगे क्योंकि उनका स्वभाव और व्यवहार बहुत खराब है। उन्होंने यह भी बयान दिया

कि उनकी मां किसी अन्य व्यक्ति के साथ रह रही हैं।

10. (iii) प्रमोद कुमार सिंह, जो उत्तरदाता-प्रतिवादी के गांव का निवासी है और दोनों पक्षों से परिचित है, को व. सा.-3 के रूप में जांचा गया। अपने मुख्य परीक्षण में, उन्होंने उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित बयान में किए गए बयानों को दोहराया। अपनी जिरह में, इस गवाह द्वारा कोई महत्वपूर्ण बयान नहीं दिया गया।

10. (iv) नक्षत्र कुमार, उत्तरदाता-प्रतिवादी को व. सा.-4 के रूप में जांचा गया। अपने मुख्य परीक्षण में, उन्होंने अपने लिखित बयान में किए गए बयानों को दोहराया। अपनी जिरह में, उन्होंने बयान दिया कि उनके पास कोई भूमि नहीं है और वह बेरोजगार हैं। उन्होंने आगे कहा कि उनका विवाह अपीलकर्ता-वादी के साथ 27.07.1996 को हुआ था, न कि 25.08.1998 को। उन्होंने यह भी कहा कि वह अपनी पत्नी को रखना चाहते हैं, लेकिन उनकी पत्नी उनके साथ रहने को तैयार नहीं हैं, हालांकि उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने दांपत्य जीवन का प्रत्यास्थापन की बहाली के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के तहत कोई याचिका दायर नहीं की है। उन्होंने आगे कहा कि उनकी पत्नी ने उनके खिलाफ दहेज की मांग का आरोप लगाकर एक आपराधिक मामला दर्ज किया है। उन्होंने यह भी कहा कि लगभग 15-16 वर्षों तक उनके बीच संबंध बहुत सौहार्दपूर्ण थे और इस विवाह से दो पुत्रों का जन्म हुआ। उन्होंने आगे बयान दिया कि जब उनका विवाह अपीलकर्ता-वादी के साथ हुआ, तब वह 20-21 वर्ष की थी और नौवीं कक्षा में पढ़ रही थी। यह उत्तरदाता-प्रतिवादी ही था जिसने अपीलकर्ता-वादी को मैट्रिक परीक्षा पास करने और बिहार पुलिस में सिपाही के रूप में चयनित होने में मदद की। उन्होंने यह भी कहा कि वह बच्चों को अपने पास रखता है और उनके सभी खर्चों को वहन करता है। उन्होंने आगे कहा कि यदि बच्चे अपनी मां के साथ रहने के लिए तैयार हो जाएं, तो वह उन्हें अपनी मां के साथ जाने की अनुमति देगा। उन्होंने यह भी बयान दिया कि अपीलकर्ता-वादी को 10 मार्च 2007 को बिहार पुलिस में सिपाही के रूप में चयनित किया गया और नियुक्ति के बाद, वह भी उनके साथ उनके

सरकारी आवास में दो वर्षों तक रहा। हालांकि, इस गवाह द्वारा और कोई महत्वपूर्ण बयान नहीं दिया गया।

11. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने के बाद परिवार न्यायालय ने सभी तैयार किए गए मुद्दों को वादी-अपीलकर्ता के खिलाफ और उत्तरदाता-प्रतिवादी के पक्ष में तय किया। मुद्दा संख्या 1 और 2, जो याचिका को बनाए रखने की योग्यता और याचिका दायर करने के वैध कारण से संबंधित हैं, के संबंध में, परिवार न्यायालय ने निर्णय दिया कि मुद्दा संख्या 3 से 6 के निष्कर्षों के आधार पर, याचिका जैसी तैयार की गई है, वह बनाए रखने योग्य नहीं है और अपीलकर्ता-वादी के पास याचिका दायर करने का कोई वैध कारण नहीं था।

12. अपीलकर्ता-वादी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि परिवार न्यायालय ने याचिका और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों की ठीक से सराहना नहीं की और गलत तरीके से पाया कि अपीलकर्ता-वादी के पास याचिका दायर करने का कोई कारण नहीं था और याचिका जैसी तैयार की गई थी, वह बनाए रखने योग्य नहीं थी। वे आगे कहते हैं कि अपीलकर्ता-वादी ने स्पष्ट रूप से उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा उनके खिलाफ की गई क्रूरता को साबित किया है। वे यह भी कहते हैं कि अपीलकर्ता ने यह भी साबित किया है कि उत्तरदाता-प्रतिवादी ने अपीलकर्ता-वादी को परित्याग किया और इसलिए वह क्रूरता और परित्याग के आधार पर तलाक की आदेश पाने की हकदार है। वे यह भी कहते हैं कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार, अपीलकर्ता-वादी दोनों नाबालिग पुत्रों प्रियांशु कुमार और साकेत कुमार की अभिरक्षा पाने की हकदार है, जो वर्तमान में उत्तरदाता-प्रतिवादी के पास हैं।

13. हालांकि, उत्तरदाता-प्रतिवादी पति के विद्वान अधिवक्ता ने विचारण अदालत के निष्कर्ष का बचाव किया और कहा कि अपीलकर्ता-वादी के पास याचिका दायर करने का कोई कारण नहीं था न ही याचिका जैसी तैयार की गई थी, वह बनाए रखने योग्य थी। वे

यह भी कहते हैं कि अपीलकर्ता-वादी ने उनके खिलाफ क्रूरता और परित्याग के कथित आधार को साबित करने में विफल रही है। वह इस विवाह से जन्मे दो नाबालिग पुत्रों की अभिरक्षा पाने की हकदारी को साबित करने में भी विफल रही है।

14. उपरोक्त तर्कों और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत, इस न्यायालय के विचार के लिए निम्नलिखित बिंदु उठते हैं:-

(i) क्या अपीलकर्ता के पास तलाक याचिका दायर करने का वैध कारण था।

(ii) क्या तलाक याचिका जैसी तैयार की गई है, वह बनाए रखने योग्य है।

(iii) क्या अपीलकर्ता-वादी ने तलाक की आदेश पाने के लिए क्रूरता के आधार को साबित किया है।

(iv) क्या अपीलकर्ता-वादी ने तलाक की आदेश पाने के लिए परित्याग के आधार को साबित किया है।

(v) क्या अपीलकर्ता-वादी दो नाबालिग बच्चों, साकेत कुमार और प्रियांशु कुमार, जो याचिका प्रस्तुत करने के समय क्रमशः 12 वर्ष और 10 वर्ष के थे, की अभिरक्षा पाने की हकदार है।

15. आइए इन बिंदुओं पर एक-एक करके विचार करें।

बिंदु संख्या 1

16. इस बिंदु पर विचार करने से पहले, यह समझना आवश्यक है कि वाद हेतुक क्या है। यह उल्लेखनीय है कि "वाद हेतुक" शब्द को सिविल प्रक्रिया संहिता में कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है। हालांकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न अवसरों पर इसे आवश्यक तथ्यों का एक समूह बताया है, जिन्हें मांगी गई राहत प्राप्त करने के लिए साबित करना आवश्यक है। यह भी स्थापित कानून है कि यह देखने के लिए कि क्या

वादपत्र में कोई कारण प्रकट होता है, न्यायालय को केवल वादपत्र में किए गए दावों और वादपत्र के समर्थन में दाखिल दस्तावेजों, यदि कोई हों, को देखना होता है। यह भी स्थापित कानून है कि वादपत्र की पठन सार्थक होनी चाहिए, न कि औपचारिक। चतुराई से तैयार किया गया वादपत्र जो वाद हेतुक का भ्रम पैदा करता हो, स्वीकार्य नहीं है। वादपत्र में स्पष्ट रूप से वाद दायर करने का अधिकार दिखाना होगा। निम्नलिखित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया जाता है:

1. **मेयर (एच.के.) लिमिटेड एवं अन्य बनाम मालिक एवं पक्ष, पोत एम.वी. फॉर्च्यून, जैसा कि (2006) 3 एससीसी 100 में प्रतिवेदित किया गया है।**
2. **आई.टी.सी. लिमिटेड, बनाम ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण, जैसा कि (1998) 2 एससीसी 70 में प्रतिवेदित किया गया है।**
3. **टी. अरिवंदनदम बनाम टी.वी. सत्यपाल एवं अन्य जैसा कि (1997) 4 एससीसी 467 में प्रतिवेदित किया गया है।**

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मेयर (एच.के.) लिमिटेड** वाद (उपरोक्त) के अनुच्छेद 11 में बताया कि "संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत न्यायालय को यह अधिकार है कि वह वादपत्र को अस्वीकार कर दे, जहां यह वाद हेतुक प्रकट नहीं करता………" **मेयर (एच.के.) लिमिटेड वाद** (उपरोक्त) के अनुच्छेद 12 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे बताया कि वादपत्र को प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित बयान में किए गए आरोपों या वादपत्र को अस्वीकार करने के लिए आवेदन के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता। न्यायालय को पूरे वादपत्र को एक समग्र रूप से पढ़ना होगा ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या यह कारण प्रकट करता है और यदि यह करता है तो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VII नियम 11 के तहत न्यायालय द्वारा वादपत्र को खारिज नहीं किया जा

सकता है। क्या वादपत्र वाद हेतुक प्रकट करता है, अनिवार्य रूप से यह तथ्य का प्रश्न है, जिसे वादपत्र में किए गए दावों को समग्र रूप से सही मानते हुए एकत्र करना होगा। वाद हेतुक उन तथ्यों का समूह है जिन्हें राहत प्राप्त करने के लिए सिद्ध करना आवश्यक है और उक्त उद्देश्य के लिए महत्वपूर्ण तथ्यों को बताना आवश्यक है, लेकिन साक्ष्यों को नहीं, सिवाय उन मामलों के जहां याचिकाएं गलत बयानी, धोखाधड़ी, जानबूझकर चूक, अनुचित प्रभाव या इसी तरह की प्रकृति पर आधारित हो। जब तक वादपत्र कुछ वाद हेतुक प्रकट करता है, जिसके लिए न्यायालय द्वारा निर्धारण की आवश्यकता है, तब तक यह तथ्य कि न्यायाधीश के मत में वादी को सफलता नहीं मिल सकती, वादपत्र को खारिज करने का आधार नहीं हो सकता।

18. आई.टी.सी. लिमिटेड बनाम ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण वाद जिसे कि **(1998) 2 एससीसी 70** में प्रतिवेदित किया गया है उसके अनुच्छेद 16 में **माननीय सर्वोच्च न्यायालय** ने **टी. अरिवंदनम** वाद (उपरोक्त) का उल्लेख करते हुए कहा कि प्रश्न यह है कि क्या वादपत्र में वास्तविक वाद हेतुक बताया गया है या केवल भ्रामक रूप से कुछ कहा गया है ताकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 से बचा जा सके। चतुराई से तैयार किए गए वाद हेतुक के भ्रम को कानून में अनुमति नहीं है और वादपत्र में स्पष्ट रूप से वाद दायर करने का अधिकार दिखाना चाहिए।

19. टी. अरिवंदनम वाद (उपरोक्त) के अनुच्छेद 5 में **माननीय सर्वोच्च न्यायालय** ने कहा कि विद्वान मुनसिफ को यह याद रखना होगा कि यदि वादपत्र की सार्थक- न कि औपचारिक-पठन पर यह स्पष्ट रूप से तंग करने वाला और बिना मेरिट का है, इस अर्थ में कि यह स्पष्ट रूप से वाद दायर करने का अधिकार प्रकट नहीं करता, तो उसे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VII, नियम 11 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए, यह सुनिश्चित करते हुए कि वहां उल्लिखित आधार पूरे हों। और, यदि चतुराई से तैयार करने से

वाद हेतुक का भ्रम पैदा किया गया है, तो इसे प्रथम सुनवाई में ही सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश X के तहत पक्ष की गहन जांच करके खारिज कर देना चाहिए।

20. अब प्रश्न यह है कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के तहत उत्तरदाता-प्रतिवादी से तलाक याचिका दायर करने और इस विवाह से जन्मे नाबालिग बच्चों की अभिरक्षा मांगने के लिए याचिकाकर्ता के लिए वाद हेतुक बनने वाले आवश्यक तथ्य क्या हैं। तलाक और नाबालिग बच्चों की अभिरक्षा के लिए याचिका दायर करने के लिए वाद हेतुक बनने वाले आवश्यक तथ्यों को जानने के लिए संबंधित वैधानिक प्रावधानों की जांच करना आवश्यक है। अब देखें कि इस विषय पर वैधानिक प्रावधान क्या हैं।

21. हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 में पति या पत्नी में से किसी एक द्वारा प्रस्तुत याचिका पर विवाह विच्छेद का प्रावधान है जिसके तहत निम्नलिखित आधारों पर तलाक का आदेश दिया जा सकता है। हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 में प्रदान किए गए आधार संपूर्ण हैं। हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i) और (ib) के तहत क्रमशः क्रूरता और परित्याग को भी विवाह के विघटन के लिए आधार के रूप में प्रदान किया गया है। सुगम संदर्भ के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 निम्नलिखित है:-

> "13. **तलाक** - (1) इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले या बाद में संपन्न कोई भी विवाह, पति या पत्नी द्वारा प्रस्तुत याचिका पर, निम्नलिखित आधारों पर तलाक की आदेश द्वारा विघटित किया जा सकता है कि दूसरा पक्ष-
>
> (i) विवाह के संपन्न होने के बाद, अपनी पत्नी या पति के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के साथ स्वेच्छा से यौन संबंध रखा है; या
>
> (iए) विवाह के संपन्न होने के बाद, याचिकाकर्ता के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है; या

(iबी) याचिका प्रस्तुत करने से ठीक पहले कम से कम दो वर्षों की निरंतर अवधि के लिए याचिकाकर्ता को परित्यक्त किया है; या
(ii) हिंदू धर्म छोड़कर किसी अन्य धर्म में परिवर्तन कर लिया है; या
(iii) असाध्य रूप से मानसिक रूप से अस्वस्थ रहा है, या ऐसी मानसिक विकृति से निरंतर या रुक-रुक कर पीड़ित रहा है कि याचिकाकर्ता से उचित रूप से अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह उत्तरदाता के साथ रहे।

विवरण - इस खंड में-

(अ) "मानसिक विकृति" अभिव्यक्ति का अर्थ है मानसिक बीमारी, मन के अवरुद्ध या अपूर्ण विकास, मनोरोगी विकार या मन का कोई अन्य विकार या विकलांगता और इसमें शामिल है सिज़ोफ्रेनिया;
(ब) "मनोरोगी विकार" अभिव्यक्ति का अर्थ है मन की एक स्थायी विकृति या अक्षमता (चाहे इसमें बुद्धि की कमी शामिल हो या न हो) जो दूसरे पक्ष के असामान्य रूप से आक्रामक या गंभीर रूप से गैर-जिम्मेदार व्यवहार में परिणत होती है, और चाहे इसे चिकित्सा उपचार की आवश्यकता हो या नहीं; या

(iv) निरस्त
(v) संक्रामक रूप में यौन रोग से पीड़ित है; या
(vi) किसी धार्मिक आदेश में प्रवेश करके संसार का त्याग किया है; या
(vii) सात वर्षों या उससे अधिक की अवधि के लिए जीवित होने की कोई खबर नहीं मिली है, जैसा कि उन व्यक्तियों द्वारा जो

स्वाभाविक रूप से उसकी खबर सुना होता, यदि वह पक्ष जीवित होता।

विवरण- इस उप-धारा में, "परित्याग" अभिव्यक्ति का अर्थ है विवाह के दूसरे पक्ष द्वारा बिना उचित कारण और बिना सहमति या ऐसी पार्टी की इच्छा के खिलाफ याचिकाकर्ता का परित्याग और इसमें विवाह के दूसरे पक्ष द्वारा याचिकाकर्ता की जानबूझकर उपेक्षा शामिल है और इसके व्याकरणिक रूप और संज्ञानात्मक अभिव्यक्तियों को तदनुसार समझा जाएगा।

(1अ) इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले या बाद में संपन्न विवाह का कोई भी पक्ष, निम्नलिखित आधारों पर तलाक की आदेश द्वारा विवाह के विघटन के लिए याचिका प्रस्तुत कर सकता है-

(i) कि न्यायिक पृथक्करण के लिए आदेश पारित होने के बाद, जिसमें वे पक्षकार थे, पक्षों के बीच सहवास की बहाली एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि के लिए नहीं हुई है; या
(ii) कि वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए आदेश पारित होने के बाद जिसमें वे पक्षकार थे, पक्षों के बीच वैवाहिक अधिकारों की बहाली एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि के लिए नहीं हुई है, ।

(2) एक पत्नी निम्नलिखित आधारों पर तलाक की आदेश द्वारा अपने विवाह के विघटन के लिए याचिका प्रस्तुत कर सकती है-

(i) इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले संपन्न किसी भी विवाह के मामले में, कि पति ने इस प्रारंभ से पहले फिर से विवाह किया था या कि इस प्रारंभ से पहले विवाहित पति की कोई अन्य पत्नी याचिकाकर्ता के विवाह के समय जीवित थी:

बशर्ते कि दोनों मामलों में दूसरी पत्नी याचिका प्रस्तुत करने के समय जीवित हो; या

(ii) कि पति ने विवाह के संपन्न होने के बाद, बलात्कार, समलैंगिकता या पशुता के अपराध में दोषी ठहराया गया है; या

(iii) कि हिंदू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78), की धारा 18 के तहत एक वाद में या आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 125 के तहत एक कार्यवाही में [या आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) की संगत धारा 488 के तहत], पति के खिलाफ पत्नी को भरण-पोषण प्रदान करने का आदेश या आदेश, जैसा भी मामला हो, पारित किया गया है, भले ही वह अलग रह रही हो और इस तरह के आदेश या आदेश के पारित होने के बाद, पक्षों के बीच सहवास एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि के लिए बहाल नहीं हुआ है; या

(iv) कि उसका विवाह (चाहे उपभुक्त हुआ हो या नहीं) तब संपन्न हुआ था जब वह पंद्रह वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले थी और उसने उस आयु को प्राप्त करने के बाद लेकिन अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले विवाह का परित्याग किया है।

विवरण यह खंड विवाह चाहे विवाह कानून (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का 68) के प्रारंभ से पहले हुआ हो या बाद में, दोनो पर लागू होता है।"

22. बच्चों की अभिरक्षा के संबंध में, संबंधित वैधानिक प्रावधान **संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890** की धारा 7(1)(ए) में पाए जा सकते हैं, जिसके अनुसार, यदि न्यायालय संतुष्ट है कि नाबालिग के कल्याण के लिए, उसके व्यक्ति के अभिभावक को नियुक्त करने का आदेश दिया जाना चाहिए, तो न्यायालय तदनुसार आदेश दे सकता है।

23. फिर **हिंदू अल्पवय और अभिभावकता अधिनियम, 1956** की धारा 13 में प्रावधान है कि किसी भी व्यक्ति को हिंदू नाबालिग लड़के के अभिभावक के रूप में नियुक्ति या घोषणा में नाबालिग का कल्याण सर्वोपरि विचार होगा। यह भी प्रावधान है कि इस अधिनियम या हिंदुओं में विवाह में अभिभावकता से संबंधित किसी भी कानून के प्रावधानों के आधार पर कोई भी व्यक्ति अभिभावकता का हकदार नहीं होगा, यदि न्यायालय की राय है कि उसकी अभिभावकता नाबालिग के कल्याण के लिए नहीं होगी।

24. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 26 में प्रावधान है कि न्यायालय समय-समय पर ऐसे अंतरिम आदेश पारित कर सकता है और आदेश में ऐसी व्यवस्थाएं कर सकता है जो वह नाबालिग बच्चों की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के संबंध में उचित समझे, जो जहां संभव हो, उनकी इच्छाओं के अनुरूप हो।

25. अब देखें कि क्या वादी-अपीलकर्ता ने तलाक और नाबालिग बच्चों की अभिरक्षा के लिए वाद हेतुक प्रकट करने वाले आवश्यक तथ्यों को याचिका में उल्लेखित किया है।

26. हिंदू विवाह अधिनियम के तहत विचारण अदालत में अपीलकर्ता-वादी द्वारा दायर याचिका की समीक्षा करने के बाद यह प्रतीत होता है कि उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा

अपीलकर्ता-वादी के खिलाफ कथित क्रूरता और अपीलकर्ता-वादी के परित्याग के संबंध में दावा किया गया है। दो नाबालिग बच्चों की अभिरक्षा के हक के संबंध में भी दावा किया गया है। इसलिए, परिवार न्यायालय ने गलत तरीके से पाया कि अपीलकर्ता-वादी ने तलाक और नाबालिग बच्चों की अभिरक्षा मांगने वाली याचिका दायर करने का वाद हेतुक बताने में विफल रही। शायद इस तरह का गलत निष्कर्ष विचारण अदालत ने इस गलत धारणा के तहत दिया कि वाद हेतुक और मांगी गई राहत को प्राप्त करने का सबूत एक ही है। याचिकाकर्ता के पास याचिका दायर करने का वाद हेतुक होने का मतलब यह नहीं है कि याचिकाकर्ता को मांगी गई राहत प्राप्त करने में सफलता मिलेगी। राहत प्राप्त करने और सफल होने के लिए, याचिकाकर्ता को अपने दावे के अनुसार अपना मामला साबित करना होगा और केवल वाद हेतुक होने से आधारों को साबित करने के लिए साक्ष्य के बिना याचिकाकर्ता को राहत प्राप्त करने का हक नहीं मिलता। इसलिए, यह कहना गलत है कि एक बार याचिकाकर्ता के खिलाफ मांगी गई राहत के संबंध में निष्कर्ष होने पर, उसके पास तलाक याचिका दायर करने का कोई वाद हेतुक नहीं था। अतः यह बिंदु अपीलकर्ता के पक्ष में तय किया जाता है।

बिंदु संख्या 2

27. यहाँ पुनः ऐसा प्रतीत होता है कि माननीय विचारण न्यायालय यह मानकर चल रहा है कि याचिका की ग्राह्यता तथा प्रार्थित राहत प्रदान करना एक ही बात है, जबकि वस्तुतः ये दोनों अलग-अलग विधिक अवधारणाएँ हैं। याचिका की ग्राह्यता का निर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता की आदेश 7, नियम 10 तथा 11 के आलोक में किया जाता है। यदि दायर की गई याचिका आदेश 7, नियम 10 एवं 11 के किसी भी प्रावधान के अंतर्गत वापसी अथवा अस्वीकृति योग्य नहीं है तो वह ग्राह्य है। चाहे याचिकाकर्ता को याचिका में माँगी गई राहत प्राप्त होगी या नहीं, यह एक भिन्न प्रश्न है। कोई याचिका ग्राह्य हो सकती है, किन्तु

विचारण के पश्चात याचिकाकर्ता को राहत न भी प्राप्त हो। राहत प्रदान करना इस बात पर निर्भर करता है कि याचिकाकर्ता ने अपने प्रकरण अथवा राहत पाने हेतु आवश्यक तथ्यों को सिद्ध किया है या नहीं। किन्तु वर्तमान मामले में, न्यायालय ने यह कहीं स्पष्ट नहीं किया है कि किस विधिक प्रावधान के अधीन वाद ग्राह्य नहीं है। सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 7, नियम 10 यह प्रावधान करता है कि यदि न्यायालय के पास क्षेत्राधिकार नहीं है तो वादपत्र लौटाया जाएगा। आदेश 7, नियम 10 इस प्रकार है:

> "**10. वादपत्र की वापसी** – (1) नियम 10क के प्रावधानों के अधीन, वादपत्र को वाद की किसी भी अवस्था में **उस न्यायालय को** प्रस्तुत करने के लिए लौटाया जाएगा **जिसमें वह वाद संस्थापित किया जाना चाहिए था।**
>
> स्पष्टीकरण – संदेहों को दूर करने हेतु यह घोषित किया जाता है कि कोई अपीलीय अथवा पुनरीक्षण न्यायालय, वाद में पारित डिक्री को निरस्त करने के पश्चात, इस उप-नियम के अधीन वादपत्र लौटाने का निर्देश दे सकता है।
>
> (2) **वादपत्र लौटाए जाने पर प्रक्रिया** – जब कोई वादपत्र लौटाया जाएगा, तो न्यायाधीश उस पर प्रस्तुति एवं वापसी की तिथि, प्रस्तुत करने वाले पक्षकार का नाम तथा लौटाए जाने का संक्षिप्त कारण अंकित करेगा।"

28. यदि आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता में प्रदत्त किसी भी आधार पर स्थिति उत्पन्न होती है, तो वाद अस्वीकृति योग्य होगा।

29. आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता इस प्रकार है :

"**11. वादपत्र की अस्वीकृति –** वादपत्र निम्नलिखित परिस्थितियों में अस्वीकृत किया जाएगा:—

(a) जहाँ यह कोई वाद हेतुक प्रकट नहीं करता;

(b) जहाँ प्रार्थित राहत का मूल्यांकन न्यूनांकित है और न्यायालय द्वारा निर्धारित समयावधि में मूल्यांकन सुधारने हेतु कहे जाने पर वादी ऐसा करने में असफल रहता है;

(c) जहाँ प्रार्थित राहत का मूल्यांकन विधिवत किया गया है, किन्तु वादपत्र अपर्याप्त मुद्रांकित कागज़ पर प्रस्तुत किया गया है और वादी को न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट समयावधि के भीतर आवश्यक मुद्रांकपत्र प्रस्तुत करने के लिए कहा जाने पर भी वह ऐसा करने में असफल रहता है;

(d) जहाँ वादपत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि वाद किसी विधि द्वारा प्रतिबंधित है;

(e) जहाँ वादपत्र द्विप्रति में दाखिल नहीं किया गया है;

(f) जहाँ वादी आदेश 7, नियम 9 के प्रावधान का पालन करने में असफल रहता है; बशर्ते कि मूल्यांकन सुधारने अथवा आवश्यक स्टाम्प प्रस्तुत करने के लिए न्यायालय द्वारा निर्धारित समय का विस्तार तभी किया जाएगा जब न्यायालय लिखित कारणों सहित इस बात से संतुष्ट हो कि वादी असाधारण परिस्थितियों के

कारण समय पर अनुपालन करने में असमर्थ था और समय न बढ़ाए जाने से वादी के साथ गम्भीर अन्याय होगा।"

30. वाद हेतुक का अभाव आदेश 7, नियम 11 के अंतर्गत वादपत्र अस्वीकृति का एक आधार है। हम पहले ही निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि वादपत्र वाद हेतुक दर्शाता है। निर्णय में वादपत्र अस्वीकृति हेतु कोई अन्य आधार नहीं पाया गया है। ऐसे निष्कर्ष के अभाव में न्यायालय यह नहीं कह सकता कि याचिका ग्राह्य नहीं है। अतः विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष विधिसम्मत नहीं है। आदेश 7, नियम 10 एवं 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के किसी भी आधार के अभाव में यह याचिका पूर्णतः ग्राह्य है।

31. अब अगले बिंदुओं पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम यह देखें कि वैवाहिक वादों में प्रमाणभार एवं प्रमाण के मानक के संबंध में न्यायिक दृष्टान्त क्या हैं।

32. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***डॉ. नारायण गणेश दास्ताने बनाम सुचेता नारायण दास्ताने*** **[1975 (2) एस सी सी 326]** में वैवाहिक मामलों में **प्रमाणभार** के स्वरूप पर विस्तार से विचार किया है और वहाँ प्रतिपादित विधि आज भी लागू है। इस निर्णय के अनुच्छेद 23 में **माननीय सर्वोच्च न्यायालय** ने कहा कि नि:संदेह, प्रमाणभार याचिकाकर्ता पर है कि वह अपना मामला सिद्ध करे, क्योंकि सामान्य नियम यही है कि जो पक्ष किसी तथ्य को प्रतिपादित करता है, प्रमाणभार उसी पर होता है, न कि उस पक्ष पर जो उसका खण्डन करता है। यह सिद्धान्त सामान्य बुद्धि के अनुरूप है क्योंकि सकारात्मक तथ्य को सिद्ध करना नकारात्मक की अपेक्षा सरल है। अतः याचिकाकर्ता को यह सिद्ध करना होगा कि उत्तरदाता ने उसके साथ क्रूरता का व्यवहार किया है।

33. जहाँ तक **प्रमाण के मानक** का प्रश्न है तो हम पाते हैं कि हिंदू विवाह अधिनियम के तहत प्रतिवादियों के कदाचारों का वर्णन करने के लिए "वैवाहिक अपराध"

शब्दों के प्रयोग के कारण कुछ गलत धारणाएँ उत्पन्न हुई थीं। इसी कारण **डॉ. नारायण गणेश दास्ताने बनाम सुचेता नारायण दास्ताने [1975 (2) एस सी सी 326] मामले में सर्वोच्च न्यायालय की माननीय पूर्ण पीठ** के निर्णय से पूर्व परस्पर विरोधी दृष्टिकोण थे। एक दृष्टिकोण यह था कि वैवाहिक वाद सिविल प्रकृति के होते हैं और अतः उनमें प्रमाण का मानक "सन्निकटन की प्रबलता" होगा; जबकि अन्य दृष्टिकोण यह था कि "वैवाहिक अपराध" शब्दावली के कारण आपराधिक मामलों की भाँति "संदेह से परे प्रमाण" का मानक लागू होना चाहिए। परंतु ***डॉ. नारायण गणेश दास्ताने*** वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की पूर्णपीठ ने स्पष्ट रूप से निर्णय दिया कि वैवाहिक वाद सिविल प्रकृति के हैं और इनमें प्रमाण का मानक "सन्निकटन की प्रबलता" होगा, न कि "संदेह से परे प्रमाण" जो कि आपराधिक मामलों पर लागू होता है। **माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने डॉ. नारायण गणेश दास्ताने वाद** (उपर्युक्त) के अनुच्छेद 24 में यह अभिलक्षित किया कि दीवानी कार्यवाहियों पर शासन करने वाला सामान्य नियम यह है कि कोई तथ्य तभी सिद्ध माना जाएगा जब वह "सन्निकटन की प्रबलता" द्वारा सिद्ध हो। इसका कारण यह है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, धारा 3 के अनुसार, कोई तथ्य तब सिद्ध माना जाता है जब न्यायालय या तो उसके अस्तित्व पर विश्वास करता है अथवा उसके अस्तित्व को इतना संभाव्य मानता है कि किसी सावधान व्यक्ति को उस विशेष मामले की परिस्थितियों में यह मानकर चलना चाहिए कि वह तथ्य अस्तित्व में है। किसी तथ्य के अस्तित्व में विश्वास इस प्रकार संभावनाओं के तुलनात्मक सन्निकटन पर आधारित हो सकता है। एक सावधान व्यक्ति, जब किसी तथ्य-परिस्थिति से संबंधित परस्पर विरोधी संभावनाओं का सामना करता है, तो वह यह मानकर चलेगा कि तथ्य अस्तित्व में है यदि विभिन्न संभावनाओं के तुलनात्मक आकलन में यह पाया जाए कि विशेष तथ्य के अस्तित्व के पक्ष में सन्निकटन की प्रबलता है। जैसा कि कोई सावधान व्यक्ति करता है, वैसे ही न्यायालय भी इस कसौटी को लागू करता है कि कोई विवादित तथ्य सिद्ध कहा जा सकता है या नहीं। इस प्रक्रिया में प्रथम चरण यह है कि संभावनाओं की

पहचान की जाए और दूसरा यह कि उनका तुलनात्मक मूल्यांकन किया जाए, यद्यपि दोनों अक्सर एक-दूसरे से मिल जाते हैं। असंभव को प्रथम चरण में हटा दिया जाता है और अप्रत्याशित को दूसरे चरण में। संभावनाओं के व्यापक दायरे के भीतर न्यायालय को अक्सर कठिन चयन करना पड़ता है, किन्तु यही चयन अंततः यह निर्धारित करता है कि सन्निकटन की प्रबलता कहाँ निहित है। चाहे विवाद का विषय क्रूरता हो अथवा किसी प्रो-नोट पर ऋण का, लागू करने की कसौटी यही होगी कि क्या "सन्निकटन की प्रबलता" के आधार पर प्रासंगिक तथ्य सिद्ध हुआ है। दीवानी वादों में सामान्यतः यही प्रमाण का मानक लागू होता है यह जानने के लिए कि क्या प्रमाणभार का निर्वहन किया गया है।

34. वैवाहिक वादों में "संदेह से परे प्रमाण" के सिद्धान्त को लागू करने से इन्कार करते हुए, **माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने डॉ. नारायण गणेश दास्ताने बनाम सुचेता नारायण दास्ताने** (उपर्युक्त) के निर्णय के अनुच्छेद 25 में यह प्रतिपादित किया है कि "संदेह से परे प्रमाण" एक उच्चतर मानक है, जो सामान्यतः आपराधिक विचारण अथवा अर्द्ध-आपराधिक प्रकृति के विषयों की जाँच करने वाले विचारणों में लागू होता है। एक आपराधिक विचारण में अभियुक्त की स्वतंत्रता दांव पर होती है, जिसे मात्र सन्निकटन की प्रबलता के आधार पर छीना नहीं जा सकता। यदि विभिन्न सन्निकटन इतनी बारीकी से संतुलित हों कि एक विवेकशील, न कि डगमगाने वाला मस्तिष्क, यह न ठहरा सके कि प्रबलता किस ओर है तो सिद्ध किए जाने वाले तथ्य के अस्तित्व के प्रति संदेह उत्पन्न होता है और ऐसे युक्तियुक्त संदेह का लाभ अभियुक्त को दिया जाता है। ऐसे विचारों को पूर्णतः दीवानी प्रकृति के विचारों में आयात करना अनुचित है। **डॉ. नारायण गणेश दास्ताने** (उपर्युक्त) के निर्णय के अनुच्छेद 26 में **माननीय उच्चतम न्यायालय** ने आगे यह भी कहा कि हिन्दू विवाह अधिनियम के अंतर्गत कहीं भी यह अपेक्षा नहीं की गई है कि याचिकाकर्ता अपने वाद को संदेह से परे प्रमाण के स्तर तक सिद्ध करे। धारा 23 न्यायालय को यह अधिकार प्रदान करती है कि यदि वह उपधारा (1) के खण्ड (ए) से (ई) में उल्लिखित विषयों पर "संतुष्ट" है तो वह डिक्री

पारित कर सकता है। यह देखते हुए कि अधिनियम के अधीन कार्यवाही मूलतः दीवानी प्रकृति की है, यहाँ "संतुष्ट" शब्द का अर्थ यही होना चाहिए कि न्यायालय "सन्निकटन की प्रबलता" के आधार पर संतुष्ट हो न कि "युक्तियुक्त संदेह से परे" के आधार पर। धारा 23 दीवानी वादों में प्रमाण के मानक को परिवर्तित नहीं करती।

35. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने डॉ. नारायण गणेश दास्ताने बनाम (उपर्युक्त) वाद के अनुच्छेद 27 में यह भी प्रतिपादित किया है कि वैवाहिक वादों में प्रमाण के मानक को लेकर उत्पन्न भ्रान्ति संभवतः उत्तरदाता के आचरण को शिथिल रूप में "वैवाहिक अपराध" कहकर वर्णित करने से उत्पन्न होती है। पति अथवा पत्नी के वे कृत्य, जिनसे वैवाहिक संबंध की पवित्रता अथवा अखण्डता को क्षति पहुँचती है, सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। विवाह करना अथवा न करना और यदि करना है तो किससे करना है- यह निस्संदेह एक निजी विषय हो सकता है, परन्तु वैवाहिक बंधन को तोड़ने की स्वतंत्रता निजी नहीं है। विवाह संस्था में समाज का भी हित निहित है, इसीलिए दोषी जीवनसाथी को मात्र एक व्यतिक्रमी के रूप में नहीं, बल्कि एक अपराधी के रूप में देखा जाता है। किन्तु यह सामाजिक दर्शन, भले ही यह इस बात को प्रभावित करे कि विवाह-विच्छेद का आधार स्वीकार करने से पूर्व किसी आरोप के लिए सबसे स्पष्ट प्रमाण अपेक्षित हो, परन्तु इसका वैवाहिक वादों में प्रमाण के मानक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

36. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **शोभा रानी बनाम मधुकर रेड्डी (ए आई आर 1988 एस सी 121)** वाद के अनुच्छेद 10 में भी यह प्रतिपादित किया है कि हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन कार्यवाही मूलतः दीवानी प्रकृति की होने के कारण "संतुष्ट" शब्द का अर्थ यह होना चाहिए कि न्यायालय "सन्निकटन की प्रबलता" के आधार पर संतुष्ट हो न

कि “युक्तियुक्त संदेह से परे” के आधार पर। अधिनियम की धारा 23 दीवानी वादों में प्रमाण के मानक को परिवर्तित नहीं करती।

37. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ए. जयचन्द्र बनाम अनील कौर (2005 (2) एस.सी.सी. 22)** प्रकरण के अनुच्छेद 10 में यह प्रतिपादित किया है कि विवाह जैसे कोमल मानवीय संबंधों में न्यायालय को मामले की संभावनाओं को देखना आवश्यक है। “युक्तियुक्त संदेह से परे प्रमाण” की अवधारणा आपराधिक वादों में लागू होती है न कि दीवानी वादों में और निश्चित रूप से पति-पत्नी जैसे नाजुक व्यक्तिगत संबंधों से जुड़े मामलों में तो बिल्कुल भी नहीं। अतः न्यायालय को यह देखना होता है कि किसी मामले में क्या-क्या संभावनाएँ हैं और कानूनी क्रूरता को केवल तथ्यात्मक रूप से ही नहीं बल्कि शिकायतकर्ता जीवनसाथी के मन पर प्रतिवादी के कृत्यों या उपेक्षाओं से पड़े प्रभाव के रूप में देखा जाना चाहिए। क्रूरता शारीरिक भी हो सकती है और मानसिक भी। शारीरिक क्रूरता के मामलों में प्रत्यक्ष और ठोस साक्ष्य उपलब्ध हो सकता है, किन्तु मानसिक क्रूरता के मामलों में प्रायः प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता। ऐसे मामलों में, जब प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है, न्यायालयों को प्रस्तुत साक्ष्यों में वर्णित घटनाओं के मानसिक प्रभाव और मानसिक प्रक्रिया की पड़ताल करनी होती है। इसी दृष्टिकोण से वैवाहिक विवादों में साक्ष्य का परीक्षण करना आवश्यक है।

38. माननीय केरल उच्च न्यायालय ने **ए. जयचन्द्र वाद** (उपर्युक्त) का उल्लेख करते हुए **मोहनदास पनिकर बनाम दक्षिणायनी (2013 एस.सी.सी. ऑनलाइन केर 24493)** वाद के अनुच्छेद 19 में यह प्रतिपादित किया है कि उपर्युक्त निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांत पुनः यह स्थापित करते हैं कि दीवानी वादों में “सन्निकटन की प्रबलता” ही वह मानक है जिसे वाद सिद्ध करने के लिए अपनाया जाना चाहिए। निस्संदेह, वैवाहिक वाद दीवानी कार्यवाही होते हैं और न्यायालय सन्निकटन की प्रबलता

पर आधारित होकर निर्णय कर सकता है, विशेषकर व्यभिचार से जुड़े मामलों में क्योंकि ऐसे मामलों में प्रत्यक्ष साक्ष्य प्राप्त करना कठिन होता है।

39. अब हम अगले बिंदु पर विचार करें।

बिंदु सं. 3.

40. यह विचार करने से पहले कि क्या उत्तरदाता/पत्नी ने अपीलकर्ता के खिलाफ क्रूरता की है, यह देखना आवश्यक होगा कि क्रूरता के संबंध में वैधानिक प्रावधान और वाद कानून क्या हैं।

41. हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(iअ) के तहत क्रूरता को तलाक के लिए एक आधार के रूप में प्रदान किया गया है। प्रावधानों के अनुसार, यदि दूसरा पक्ष याचिकाकर्ता के साथ क्रूरता का व्यवहार करता है तो पति या पत्नी द्वारा प्रस्तुत याचिका पर विवाह को तलाक की आदेश द्वारा विघटित किया जा सकता है।

42. हालांकि, हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(iअ) में प्रयुक्त "क्रूरता" शब्द को हिंदू विवाह अधिनियम के तहत परिभाषित नहीं किया गया है। लेकिन इस शब्द की व्याख्या **माननीय सर्वोच्च न्यायालय** ने कई अवसरों पर की है।

43. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **शोभा रानी बनाम माधुकर रेड्डी एआईआर 1988 एस सी 121** के निर्णय में, अनुच्छेद 4 में यह अभिमत व्यक्त किया है कि 'क्रूरता' शब्द की परिभाषा अधिनियम में नहीं दी गई है। वस्तुतः इसे परिभाषित किया भी नहीं जा सकता था। यह शब्द मानवीय आचरण अथवा व्यवहार के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है। यह वैवाहिक कर्तव्यों एवं दायित्वों से सम्बन्धित आचरण है। यह एक पक्ष के ऐसे आचरण की शृंखला है, जो दूसरे पक्ष को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। क्रूरता मानसिक अथवा शारीरिक, जानबूझकर अथवा अनजाने में की गई, दोनों प्रकार की हो सकती है। यदि वह शारीरिक है तो न्यायालय के लिए उसका निर्धारण करना कठिन नहीं होगा। यह वस्तुतः

तथ्य और उसकी गहनता का प्रश्न है। परन्तु यदि वह मानसिक है तो समस्या अधिक जटिल हो जाती है। सबसे पहले, यह जाँच करनी होगी कि क्रूर व्यवहार की प्रकृति क्या थी। दूसरे, यह देखना होगा कि उस आचरण का जीवनसाथी के मन पर क्या प्रभाव पड़ा। क्या उससे यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हुई कि उसके साथ रहना हानिकारक अथवा घातक सिद्ध होगा? अंततः यह विषय न्यायालय द्वारा अनुमानों पर आधारित निष्कर्ष का है, जिसे आचरण की प्रकृति और उससे पीड़ित जीवनसाथी पर हुए प्रभाव को ध्यान में रखते हुए निकाला जाना है। किन्तु, ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहाँ जिस आचरण की शिकायत की गई है, वह स्वयं में ही इतना घृणित अथवा अवैध हो कि उसे स्वयं क्रूरता मान लिया जाए। ऐसे मामलों में पीड़ित जीवनसाथी पर पड़े प्रभाव अथवा हानिकारक परिणाम की पृथक् जाँच की आवश्यकता नहीं होती। यदि ऐसा आचरण सिद्ध अथवा स्वीकार कर लिया गया है, तो मात्र उसी आधार पर क्रूरता सिद्ध मानी जाएगी।

44. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **शोभा रानी वि. माधुकर रेड्डी वाद** (उल्लेखित) के अनुच्छेद 5 में यह भी प्रतिपादित किया है कि हमारे चारों ओर के जीवन में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है। विशेषकर वैवाहिक कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों में बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है। इनमें घर-घर अथवा व्यक्ति-व्यक्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न स्तर होते हैं। अतः जब कोई जीवनसाथी अपने साथी या संबंधियों द्वारा किए गए क्रूर व्यवहार की शिकायत करता है तब न्यायालय को जीवन के किसी निश्चित मानक की खोज नहीं करनी चाहिए। किसी एक वाद में जिसे क्रूरता माना गया है, वह आवश्यक नहीं कि दूसरे वाद में भी क्रूरता मानी जाए। आरोपित क्रूरता बड़े पैमाने पर उन परिस्थितियों पर निर्भर करती है जिनमें पक्षकार अभ्यस्त हैं अथवा उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर निर्भर करती है। यह उनकी संस्कृति और उन मानवीय मूल्यों पर भी निर्भर कर सकती है, जिनको वे महत्व देते हैं। अतः न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं को चाहिए कि वे अपने व्यक्तिगत जीवन की धारणाएँ इसमें न थोपें। उनका जीवन पक्षकारों के जीवन के समानांतर न भी हो सकता है। उनके और

पक्षकारों के बीच पीढ़ीगत अंतर भी हो सकता है। इसलिए यह उचित होगा कि वे अपने रीति-रिवाज और आचरण को अलग रखें। यह भी उचित होगा कि वे पूर्वनिर्णयों पर अधिक निर्भर न रहें। प्रत्येक वाद अलग हो सकता है। वे मानव-आचरण से जुड़े होते हैं, जो सामान्यतः समान नहीं होता। मनुष्यों में ऐसे आचरण की कोई सीमा नहीं है जो क्रूरता का रूप ले सकता है। किसी भी वाद में नई प्रकार की क्रूरता उभर सकती है, जो मानव व्यवहार और किसी व्यक्ति की सहनशीलता अथवा असहनशीलता पर आधारित होती है। यही क्रूरता का अद्भुत क्षेत्र है।

45. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **शोभा रानी वाद** (उपर्युक्त) के अनुच्छेद 17 में यह भी प्रतिपादित किया है कि जिस संदर्भ और परिवेश में धारा में 'क्रूरता' शब्द का प्रयोग किया गया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि क्रूरता में इरादा का होना आवश्यक तत्व नहीं है। इस शब्द को वैवाहिक संबंधों के मामलों में उसके सामान्य अर्थ में ही समझा जाना चाहिए। यदि किसी आचरण अथवा आरोपित क्रूर कृत्य के स्वभाव से यह अनुमान लगाया जा सके कि उसका उद्देश्य हानि पहुँचाना, उत्पीड़न करना या आहत करना था, तो क्रूरता को सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है। परंतु यदि ऐसा अभिप्राय न भी हो, तो भी इससे कोई अंतर नहीं पड़ता, बशर्ते सामान्य मानवीय व्यवहार के दृष्टिकोण से वह आचरण अन्यथा क्रूरता ही माना जाए। इस आधार पर किसी पक्षकार को राहत देने से इंकार नहीं किया जा सकता कि उसके साथ जानबूझकर अथवा उद्देश्यपूर्ण रूप से दुराचार नहीं किया गया।

46. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **गणनाथ पट्टनायक बनाम उड़ीसा राज्य (2002 (2) एस.सी.सी. 619)** में प्रतिपादित किया है कि क्रूरता की अवधारणा और उसका प्रभाव व्यक्ति-व्यक्ति के अनुसार भिन्न होता है, तथा यह उस व्यक्ति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर करता है। उपरोक्त धारा के अंतर्गत अपराध गठित करने हेतु

"क्रूरता" का शारीरिक होना आवश्यक नहीं है। मानसिक यातना अथवा असामान्य आचरण भी किसी वाद में क्रूरता और उत्पीड़न के रूप में माना जा सकता है।

47. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ए. जयचन्द्र बनाम अनील कौर (2005 (2) एस.सी.सी. 22)** के अनुच्छेद 10 में प्रतिपादित किया है कि विवाह विच्छेद का आधार बनने वाली क्रूरता को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है- जानबूझकर और अनुचित आचरण जो जीवन, अंग अथवा स्वास्थ्य (शारीरिक अथवा मानसिक) के लिए ख़तरे का कारण बने अथवा जिसके कारण ऐसे ख़तरे की यथोचित आशंका उत्पन्न हो। मानसिक क्रूरता का प्रश्न उस समाज की वैवाहिक मर्यादाओं के आलोक में विचारणीय है जिससे पक्षकार संबंधित हैं तथा उनकी सामाजिक मान्यताओं, स्थिति और जिस परिवेश में वे रहते हैं, उसके संदर्भ में देखा जाना चाहिए। क्रूरता में मानसिक क्रूरता भी सम्मिलित है जो वैवाहिक दुराचार की परिधि में आती है। क्रूरता का शारीरिक होना आवश्यक नहीं है। यदि जीवनसाथी के आचरण से यह स्थापित हो जाए अथवा ऐसा उचित निष्कर्ष निकाला जा सके कि उसका व्यवहार इस प्रकार का है जिससे दूसरे जीवनसाथी के मानसिक कल्याण के प्रति आशंका उत्पन्न हो तो ऐसा आचरण क्रूरता माना जाएगा।

48. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***ए. जयचन्द्र वाद*** (उपर्युक्त) के अनुच्छेद 12 में आगे प्रतिपादित किया है कि क्रूरता स्थापित करने के लिए जिस आचरण की शिकायत की गई है वह इतना **"गंभीर और महत्वपूर्ण"** होना चाहिए कि इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके कि याचिकाकर्ता जीवनसाथी से यह उचित रूप से अपेक्षित नहीं किया जा सकता कि वह दूसरे जीवनसाथी के साथ रहना जारी रखे। यह आचरण वैवाहिक जीवन के "साधारण उतार-चढ़ाव" से अधिक गंभीर होना चाहिए। परिस्थितियों और पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए उस आचरण का परीक्षण करना आवश्यक है ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि आरोपित आचरण वैवाहिक विधि के अंतर्गत क्रूरता की श्रेणी में आता है या नहीं। आचरण

का मूल्यांकन कई कारकों की पृष्ठभूमि में किया जाना चाहिए जैसे कि पक्षकारों की सामाजिक स्थिति, उनकी शिक्षा, शारीरिक और मानसिक दशा, रीति-रिवाज और परम्पराएँ। सटीक परिभाषा अथवा व्यापक विवरण देना कठिन है कि कौन-से विशिष्ट तथ्य अथवा परिस्थितियाँ क्रूरता का गठन करेंगी। आचरण ऐसा होना चाहिए जो न्यायालय के विवेक को संतुष्ट करे कि उस आचरण के कारण पक्षकारों के बीच संबंध इतने अधिक बिगड़ गए हैं कि वे मानसिक पीड़ा, यातना या क्लेश के बिना साथ नहीं रह सकते और इस कारण पीड़ित जीवनसाथी को तलाक प्राप्त करने का अधिकार है। क्रूरता स्थापित करने के लिए शारीरिक हिंसा का होना अनिवार्य नहीं है, ऐसा सतत आचरण, जिससे अपरिमेय मानसिक पीड़ा और यातना पहुँचती है, अधिनियम की धारा 10 के अंतर्गत क्रूरता मानी जा सकती है। मानसिक क्रूरता गाली-गलौज या अश्लील और अपमानजनक भाषा प्रयोग करने से भी हो सकती है जिससे दूसरे पक्ष की मानसिक शांति निरंतर भंग होती रहे।

49. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ए. जयचन्द्र वाद** (उपर्युक्त) के अनुच्छेद 13 में आगे प्रतिपादित किया है कि जब न्यायालय तलाक की याचिका पर विचार कर रहा हो जो कि क्रूरता के आधार पर प्रस्तुत की गई हो तब यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसके समक्ष उपस्थित समस्याएँ मानवीय जीवन से जुड़ी हैं और किसी जीवनसाथी के आचरण में होने वाले मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए ही तलाक की याचिका का निस्तारण किया जाना चाहिए। कभी-कभी नगण्य अथवा तुच्छ प्रतीत होने वाला आचरण भी दूसरे के मन में पीड़ा उत्पन्न कर सकता है। किंतु उस आचरण को क्रूरता कहलाने के लिए एक निश्चित गंभीरता के स्तर तक पहुँचना आवश्यक है। उसकी गंभीरता का आकलन न्यायालय को करना होगा। यह देखा जाना चाहिए कि क्या वह आचरण ऐसा था जिसे कोई भी सामान्य समझ रखने वाला व्यक्ति सहन नहीं कर सकता। यह भी विचारणीय है कि क्या शिकायत करने वाले जीवनसाथी से अपेक्षा की जा सकती है कि वह ऐसे आचरण को सामान्य मानवीय जीवन का हिस्सा मानकर सहन करे। हर वैवाहिक आचरण जो कभी-कभी

दूसरे जीवनसाथी को कष्ट पहुँचाता है क्रूरता की श्रेणी में नहीं आता। साधारण झुंझलाहट, दैनिक जीवन में पति-पत्नी के बीच होने वाले छोटे-छोटे झगड़े भी क्रूरता नहीं माने जा सकते। वैवाहिक जीवन में क्रूरता अनेक प्रकार की हो सकती है यह सूक्ष्म भी और क्रूर भी हो सकती है। यह शब्दों, हाव-भाव, यहाँ तक कि केवल मौन के रूप में, हिंसक भी हो सकती है और अहिंसक भी हो सकती है।

50. हरभजन सिंह मोंगा बनाम अमरजीत कौर (1985 एस सी सी ऑनलाइन एम पी 83) में **माननीय मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय** ने यह प्रतिपादित किया कि यदि कोई जीवनसाथी आत्महत्या करने की धमकी देता है ताकि दूसरे जीवनसाथी तथा उसके परिवारजनों को झूठे आपराधिक वाद में फँसाया जा सके तो ऐसा आचरण भी क्रूरता की श्रेणी में आता है।

51. श्रीमती उमा वंती बनाम अर्जन देव (1995 एस सी सी ऑनलाइन पी एण्ड एच 56) में **माननीय पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय** ने यह प्रतिपादित किया कि यदि जीवनसाथी का असामान्य अथवा अस्वस्थ मस्तिष्क या अन्यथा के कारण कोई विचित्र आचरण हो तो वह भी क्रूरता की श्रेणी में आता है। **माननीय न्यायालय** ने यह माना कि अपीलकर्ता (पत्नी) का दिन-प्रतिदिन का आचरण ऐसा था जिससे उत्तरदाता (पति) का मानसिक शांति और वैवाहिक सामंजस्य भंग होता रहा जो निश्चित ही कानूनी क्रूरता कहलाएगा। पत्नी अस्वस्थ मस्तिष्क की नहीं भी हो सकती थी फिर भी पति द्वारा सिद्ध किया गया उसका विचित्र आचरण इस बात के लिए पर्याप्त था कि उसे कानूनी क्रूरता माना जाए। पति, पत्नी की संगति में शांति से नहीं रह सकता था। उसके विचित्र व्यवहार के कारण सदैव अशांति बनी रही और इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि उसका आचरण पति के प्रति क्रूर नहीं था।

52. **श्रीमती रीता निजहवान बनाम श्री बलकृष्ण निजहवान (आई एल आर (1973) दिल्ली 944)** में **माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय** ने यह निर्णय दिया कि यौन संबंध से इंकार करना, चाहे वह नपुंसकता के कारण हो अथवा अन्य किसी कारण से, पीड़ित जीवनसाथी के प्रति क्रूरता के समान है। **माननीय न्यायालय** ने यह भी प्रतिपादित किया कि यौन संबंध विवाह की नींव है और यदि सशक्त तथा सामंजस्यपूर्ण यौन गतिविधि न हो तो कोई भी विवाह लंबे समय तक चल ही नहीं सकता। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि विवाह में यौन गतिविधि का स्त्री के मन और शरीर पर अत्यंत अनुकूल प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप यदि स्त्री को उचित यौन संतुष्टि नहीं मिलती है तो यह अवसाद और निराशा को जन्म देता है। यह कहा गया है कि जब यौन संबंध सुखद और सामंजस्यपूर्ण होते हैं तो वे स्त्री के मस्तिष्क को प्रफुल्लित करते हैं, उसके चरित्र का विकास करते हैं और उसकी जीवन-शक्ति को कई गुना बढ़ा देते हैं। यह मान्यता आवश्यक है कि विवाह के लिए यौन संबंध में असफलता या निराशा से अधिक घातक और कुछ भी नहीं हो सकता।

53. **श्रीमती रीता निजहवान** (उपर्युक्त) वाद में **माननीय न्यायालय** ने आगे यह भी प्रतिपादित किया कि यह विधि का सुप्रतिष्ठित सिद्धांत है कि यदि विवाह में से कोई एक पक्ष, जब वह शारीरिक रूप से स्वस्थ हो, यौन संबंध बनाने से इंकार करता है तो यह क्रूरता मानी जाएगी और दूसरा पक्ष इस आधार पर तलाक का आदेश प्राप्त करने का अधिकारी होगा। हमारे मत में इससे कोई विधिक अंतर नहीं पड़ता कि यौन संबंध से इंकार उत्तरदाता की यौन दुर्बलता के कारण है जिससे वह अपीलकर्ता के साथ सहवास करने में असमर्थ है अथवा यह उत्तरदाता की जानबूझकर की गई अस्वीकृति का परिणाम है; दोनों ही स्थितियों में परिणाम एक ही है- अर्थात् अपीलकर्ता को सामान्य वैवाहिक यौन जीवन से वंचित किया जाना, जिससे उसके जीवन में हताशा और दुख का प्रवेश होता है और यही क्रूरता है।

54. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **समर घोष बनाम जया घोष (2007) 4 एस सी सी 511** के अनुच्छेद 99 में क्रूरता से संबंधित विभिन्न निर्णयों का उल्लेख और विवेचन करने के उपरांत यह प्रतिपादित किया कि मानव मस्तिष्क अत्यंत जटिल होता है और मानव व्यवहार भी उतना ही जटिल होता है, इसी प्रकार, मानव चतुराई अथाह होती है, इसलिए संपूर्ण मानव व्यवहार को किसी एक परिभाषा में समाहित करना लगभग असंभव है। जो आचरण एक मामले में क्रूरता कहलाएगा, वह दूसरे मामले में क्रूरता न माना जाए, यह संभव है। क्रूरता की अवधारणा व्यक्ति-विशेष पर निर्भर करती है— उसकी परवरिश, संवेदनशीलता का स्तर, शैक्षिक, पारिवारिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, आर्थिक स्थिति, सामाजिक प्रतिष्ठा, रीति-रिवाज, परंपराएँ, धार्मिक विश्वास, मानवीय मूल्य और मूल्य प्रणाली पर।

55. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **समर घोष बनाम जया घोष** वाद (उपर्युक्त) में आगे यह भी प्रतिपादित किया कि मानसिक क्रूरता की कोई सर्वसमावेशी परिभाषा नहीं दी जा सकती, जिसके अंतर्गत मानसिक क्रूरता के सभी प्रकार के मामलों को समाहित किया जा सके। अनुच्छेद 100 में **माननीय न्यायालय** ने आगे यह कहा कि मानसिक क्रूरता की अवधारणा स्थिर नहीं रह सकती; यह समय के साथ बदलती रहती है; आधुनिक संस्कृति का प्रभाव, मुद्रित एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा मूल्य प्रणाली आदि के प्रभाव से यह निरंतर परिवर्तित होती है। जो आचरण वर्तमान में मानसिक क्रूरता माना जाए वह समय के साथ मानसिक क्रूरता न रहे अथवा इसके विपरीत भी संभव है। अतः वैवाहिक मामलों में मानसिक क्रूरता के निर्धारण हेतु कोई कठोर या निश्चित सूत्र अथवा तयशुदा मानक नहीं हो सकते। वैवाहिक मामलों में मानसिक क्रूरता के प्रश्न का विवेचन करते समय उचित और न्यायसंगत तरीका यह होगा कि प्रत्येक मामले को उसकी विशिष्ट परिस्थितियों और तथ्यों के आधार पर उपर्युक्त कारकों को ध्यान में रखते हुए परखा जाए।

56. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **समर घोष वाद** (उपर्युक्त) के अनुच्छेद 101 में यह प्रतिपादित किया कि मानसिक क्रूरता के मामलों के निपटारे हेतु कोई एकसमान मानक निर्धारित नहीं किया जा सकता। तथापि, न्यायालय ने यह उचित समझा कि कुछ उदाहरणात्मक परिस्थितियाँ बताई जाएँ जो मानसिक क्रूरता से संबंधित मामलों में मार्गदर्शक हो सकती हैं साथ ही यह भी स्पष्ट किया कि ये मात्र उदाहरण हैं, पूर्ण एवं अंतिम सूची नहीं। **माननीय सर्वोच्च न्यायालय** द्वारा बताए गए उदाहरण इस प्रकार हैं:

> " (i) यदि पति-पत्नी के संपूर्ण वैवाहिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में यह सिद्ध हो कि उनके बीच तीव्र मानसिक पीड़ा, कष्ट और दुख इस सीमा तक है कि वे एक साथ जीवन व्यतीत नहीं कर सकते हैं तो यह मानसिक क्रूरता की परिधि में आ सकता है।
>
> (ii) यदि संपूर्ण वैवाहिक जीवन के समग्र मूल्यांकन से यह स्पष्ट हो जाए कि परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि पीड़ित पक्ष से यह अपेक्षा करना उचित नहीं कि वह ऐसे आचरण को सहते हुए जीवनसाथी के साथ रह सके।
>
> (iii) मात्र उदासीनता या स्नेह की कमी क्रूरता नहीं है, परंतु लगातार कटु भाषा, असभ्य आचरण, उदासीनता और उपेक्षा इस स्तर तक पहुँच जाए कि वैवाहिक जीवन असहनीय हो जाए तो यह मानसिक क्रूरता है।
>
> (iv) मानसिक क्रूरता मनःस्थिति है। यदि एक जीवनसाथी को दूसरे के आचरण से लंबे समय तक गहन पीड़ा, निराशा और हताशा होती है तो यह मानसिक क्रूरता मानी जाएगी।
>
> (v) लगातार अपमानजनक और अवहेलनात्मक व्यवहार, जिसका उद्देश्य जीवनसाथी को प्रताड़ित करना अथवा उसका जीवन दुखमय बना देना हो, मानसिक क्रूरता है।

(vi) किसी एक जीवनसाथी का लगातार अनुचित और असंगत आचरण दूसरे के शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य पर वास्तव में गंभीर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। शिकायतित आचरण और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न खतरा अथवा आशंका अत्यंत गंभीर और ठोस होना चाहिए।

(vii) लगातार निंदनीय आचरण, जानबूझकर उपेक्षा, उदासीनता अथवा वैवाहिक करुणा के सामान्य मानक से पूर्ण विचलन, जिससे मानसिक स्वास्थ्य को क्षति पहुँचे अथवा जीवनसाथी को विकृत आनंद मिले, मानसिक क्रूरता होगी।

(viii) आचरण ईर्ष्या, स्वार्थ, अधिकार-भावना से कहीं अधिक होना चाहिए, जो अप्रसन्नता और असंतोष और भावनात्मक परेशानी का कारण बनता है मानसिक क्रूरता के आधार पर तलाक देने का आधार नहीं हो सकती है।

(ix) केवल छोटी-मोटी चिड़चिड़ाहट, झगड़े, विवाहित जीवन में सामान्य टूट-फूट जो कि दिन-प्रतिदिन होती रहती है, मानसिक क्रूरता के आधार पर तलाक देने के लिए पर्याप्त नहीं होगी।

(x) वैवाहिक जीवन की समग्र समीक्षा की जानी चाहिए और वर्षों की अवधि में कुछ छिटपुट घटनाओं को क्रूरता नहीं माना जाएगा। दुर्व्यवहार काफ़ी लंबे समय तक जारी रहना चाहिए, जहाँ रिश्ता इस हद तक बिगड़ गया हो कि पति या पत्नी के कार्यों और व्यवहार के कारण, पीड़ित पक्ष के लिए दूसरे पक्ष के साथ रहना बेहद मुश्किल हो जाए, मानसिक क्रूरता मानी जा सकती है।

(xi) यदि पति बिना चिकित्सीय कारण और पत्नी की सहमति अथवा जानकारी के नसबंदी करवा ले या पत्नी बिना चिकित्सीय कारण और पति की सहमति

अथवा जानकारी के नसबंदी या गर्भपात करा ले तो यह मानसिक क्रूरता हो सकती है।

(xii) यदि कोई जीवनसाथी बिना किसी शारीरिक अक्षमता या वैध कारण के लंबे समय तक यौन संबंध बनाने से एकतरफा इंकार कर दे तो यह मानसिक क्रूरता मानी जाएगी।

(xiii) यदि विवाह के बाद पति या पत्नी में से कोई एकतरफा निर्णय ले ले कि संतान उत्पन्न नहीं करनी है, तो यह मानसिक क्रूरता होगी।

(xiv) यदि पति-पत्नी के बीच लंबे समय तक निरंतर अलगाव बना रहे, तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वैवाहिक संबंध अब सुधार योग्य नहीं रहे। ऐसा विवाह केवल एक कानूनी बंधन भर रह जाता है, वास्तविकता में उसका कोई अस्तित्व नहीं होता। ऐसे मामलों में उस बंधन को समाप्त न करना विवाह की पवित्रता की रक्षा नहीं करता, बल्कि पति-पत्नी की भावनाओं और संवेदनाओं की अवहेलना करता है। ऐसी परिस्थितियों में भी मानसिक क्रूरता मानी जा सकती है।

57. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रवि कुमार बनाम जुमला देवी, 2010 एस सी सी आर 265** के अनुच्छेद 18 में यह प्रतिपादित किया कि वैवाहिक संबंध में क्रूरता का तात्पर्य स्वाभाविक रूप से पति-पत्नी के मध्य आपसी सम्मान एवं समझ के अभाव से है, जो संबंधों को कटु बना देता है और प्रायः ऐसे अनेक आचरण उत्पन्न करता है जिन्हें क्रूरता कहा जा सकता है। कभी-कभी वैवाहिक संबंधों में क्रूरता हिंसा का रूप धारण कर लेती है और कभी यह किसी अन्य रूप में प्रकट होती है। कई बार यह केवल दृष्टिकोण या आचरण की प्रवृत्ति के रूप में सामने आती है। कुछ परिस्थितियों में मौन धारण करना भी क्रूरता की श्रेणी में आ सकता है। इस कारण वैवाहिक व्यवहार में क्रूरता की कोई निश्चित

परिभाषा संभव नहीं है और इसकी श्रेणियों को कभी सीमित नहीं किया जा सकता। पति पत्नी के प्रति क्रूर है अथवा पत्नी पति के प्रति क्रूर है, यह तथ्य निर्धारित करते समय मामले के समस्त तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, न कि किसी पूर्व निर्धारित कठोर सूत्र से। वैवाहिक मामलों में क्रूरता अनंत प्रकार की हो सकती है। यह सूक्ष्म भी हो सकती है और निष्ठुर भी तथा इशारों अथवा शब्दों के माध्यम से भी व्यक्त हो सकती है।

58. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रामचंदर बनाम अनंता, (2015) 11 एस सी सी 539** के अनुच्छेद 10 में यह प्रतिपादित किया कि धारा 13(1)(i-ए) के प्रयोजनार्थ क्रूरता का आशय ऐसे आचरण से है, जो एक जीवनसाथी द्वारा दूसरे जीवनसाथी के प्रति किया जाए और जिसके फलस्वरूप दूसरे जीवनसाथी के मन में यह यथोचित आशंका उत्पन्न हो कि उसके लिए वैवाहिक संबंध को जारी रखना सुरक्षित नहीं है। क्रूरता शारीरिक भी हो सकती है और मानसिक भी।

59. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रामचंदर वाद** (उपर्युक्त) में यह भी प्रतिपादित किया कि क्रूरता की घटनाओं को पृथक रूप से नहीं देखा जाना चाहिए। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों से उभरने वाले तथ्यों एवं परिस्थितियों के सामूहिक प्रभाव को ध्यान में रखते हुए यह निष्पक्ष निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि क्या वादी दूसरे जीवनसाथी के आचरण के कारण मानसिक क्रूरता का शिकार हुआ है।

60. विनिता सक्सेना बनाम पंकज पंडित, (2006) 3 एस सी सी 778 में **माननीय सर्वोच्च न्यायालय** ने अनुच्छेद 31 में प्रतिपादित किया कि अनेक निर्णयों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि मानसिक क्रूरता शारीरिक हानि की अपेक्षा भी अधिक गंभीर आघात पहुँचा सकती है तथा पीड़ित अपीलकर्ता के मन में वैसी आशंका उत्पन्न कर सकती है जैसा कि धारा में निहित है। इसे प्रकरण के समग्र तथ्यों एवं पति-पत्नी के मध्य

वैवाहिक संबंधों के आलोक में निर्धारित किया जाना चाहिए। क्रूरता सिद्ध होने के लिए यह आवश्यक है कि पक्षकार को इस प्रकार का जाना-बूझा व्यवहार सहना पड़ा हो, जिसने शरीर अथवा मन को पीड़ा पहुँचाई हो या ऐसी आशंका उत्पन्न की हो कि वैवाहिक सहजीवन की निरंतरता परिस्थितियों के दृष्टिगत हानिकारक अथवा प्रतिकूल सिद्ध होगी।

61. **माननीय सर्वोच्च न्यायालय** ने **विनिता सक्सेना वाद** (उपरोक्त) के अनुच्छेद-32 में आगे यह प्रतिपादित किया कि "क्रूरता" शब्द की कोई परिभाषा नहीं की गई है तथा इसे मानवीय आचरण या मानवीय व्यवहार के संदर्भ में प्रयुक्त किया गया है। यह आचरण वैवाहिक कर्तव्यों एवं दायित्वों से संबंधित या उनसे जुड़ा हुआ होता है। यह एक सतत आचरण की श्रृंखला है जो दूसरे पक्ष को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। क्रूरता मानसिक अथवा शारीरिक, जानबूझकर की गई अथवा अनजाने में की गई हो सकती है। ऐसे भी प्रकरण हो सकते हैं जहाँ आरोपित आचरण स्वयं ही इतना बुरा हो तथा अपने आप में अवैध या गैर-कानूनी हो। ऐसे मामलों में अन्य पक्ष पर उसके प्रभाव या प्रतिकूल परिणाम की जाँच अथवा विचार आवश्यक नहीं है। इस प्रकार के मामलों में यदि उक्त आचरण सिद्ध या स्वीकार कर लिया जाए तो क्रूरता स्वतः स्थापित हो जाएगी।

62. **माननीय सर्वोच्च न्यायालय** ने **विनिता सक्सेना वाद** (उपरोक्त) के अनुच्छेद-36 में आगे यह प्रतिपादित किया कि क्रूरता का विधिक सिद्धांत जिसकी विधि द्वारा कोई परिभाषा नहीं की गई है, सामान्यतः उस आचरण के रूप में वर्णित किया जाता है जो जीवन, अंग अथवा स्वास्थ्य (शारीरिक एवं मानसिक) के लिए खतरा उत्पन्न करे अथवा ऐसे किसी खतरे की उचित आशंका को जन्म दे। क्रूरता से संबंधित प्रत्येक प्रश्न में सामान्य नियम यह है कि सम्पूर्ण वैवाहिक संबंध पर विचार किया जाना चाहिए; और यह नियम विशेष महत्त्व रखता है जब क्रूरता हिंसात्मक कृत्यों से न होकर हानिकारक उलाहनों, शिकायतों, आरोपों अथवा तानों के रूप में हो। यह मानसिक भी हो

सकती है, जैसे पत्नी के प्रति उदासीनता एवं शीतलता, उसे संगति से वंचित रखना, उसके प्रति घृणा एवं वितृष्णा रखना; अथवा शारीरिक भी हो सकती है, जैसे हिंसात्मक कृत्य करना और बिना किसी उचित कारण के यौन संबंध से परहेज़ करना। यह सिद्ध होना आवश्यक है कि विवाह के एक पक्ष ने परिणामों की परवाह किए बिना ऐसा व्यवहार किया हो जिसे परिस्थितियों में दूसरा पक्ष सहन करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता और उस आचरण ने स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाई हो अथवा ऐसी क्षति की उचित आशंका उत्पन्न की हो। क्रूरता के मामले में दो पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है। अपीलकर्ता के दृष्टिकोण से यह देखना होगा कि क्या अपीलकर्ता को उक्त आचरण सहन करने के लिए बाध्य किया जा सकता है? उत्तरदाता के दृष्टिकोण से यह देखना होगा कि क्या यह आचरण क्षम्य था? तत्पश्चात् न्यायालय को यह निर्णय करना होता है कि क्या संपूर्ण निंदनीय आचरण का कुल योग वास्तव में क्रूरता था। यह इस पर निर्भर करता है कि क्या उक्त संचयी आचरण इतना गंभीर था कि किसी सामान्य व्यक्ति के दृष्टिकोण से परिस्थितियों में प्रतिवादी द्वारा दिए जा सकने वाले किसी भी औचित्य पर विचार करने के बाद भी, यह कहा जा सके कि याचिकाकर्ता को ऐसा आचरण सहन करने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।

63. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **विनिता सक्सेना वाद** (उपरोक्त) के अनुच्छेद-37 में आगे यह प्रतिपादित किया कि उक्त प्रावधान के प्रयोजनार्थ आवश्यक मानसिक क्रूरता का गठन केवल ऐसी घटनाओं की संख्या पर अथवा केवल ऐसे आचरण की निरंतरता पर निर्भर नहीं करेगा, बल्कि वस्तुतः इस पर निर्भर करेगा कि यदि ऐसी घटना एक बार भी घटित हो तो उसकी तीव्रता, गम्भीरता एवं कलंककारी प्रभाव क्या है और उसका वैवाहिक जीवन के अनुकूल वातावरण बनाए रखने हेतु आवश्यक मानसिक दृष्टिकोण पर कितना प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

64. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **विनिता सक्सेना वाद** (उपरोक्त) के अनुच्छेद-38 में यह भी अवलोकित किया कि यदि ताने, शिकायतें और उलाहने सामान्य प्रकृति के मात्र हों तो न्यायालय को सम्भवतः यह आगे विचार करना आवश्यक हो सकता है कि क्या उनका निरन्तर या दीर्घ अवधि तक बना रहना ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है, जिससे सामान्यतः जो कृत्य इतना गम्भीर नहीं माना जाता, वह इतना हानिकारक एवं पीड़ादायक हो जाता है कि पीड़ित जीवनसाथी वास्तविक और युक्तिसंगत रूप से यह निष्कर्ष निकालने पर विवश हो जाए कि वैवाहिक जीवन का निर्वाह अब और सम्भव नहीं है।

65. अब, हम बिंदु संख्या 3 का परीक्षण करते हैं कि क्या अपीलकर्ता-वादी ने तलाक का डिक्री प्राप्त करने हेतु क्रूरता का आधार सिद्ध किया है।

बिंदु सं. 3

66. वर्तमान मामले में हम पाते हैं कि क्रूरता के संबंध में अपीलकर्ता-वादी/पत्नी ने अपनी वाद-पत्र में यह निवेदन किया है कि उसे अपर्याप्त दहेज एवं आभूषणों के कारण प्रतिवादी-पति एवं उसके परिजनों द्वारा शारीरिक एवं मानसिक क्रूरता का शिकार बनाया गया तथा अंततः उसकी समस्त वस्तुएँ एवं आभूषण अपने पास रखकर उसे वैवाहिक गृह से निकाल दिया गया। इस संदर्भ में उसने शिकायत मामला संख्या 203/2013 दायर किया है, जो माननीय एस.डी.जे.एम., कटिहार के न्यायालय में विचाराधीन है। यह भी आरोप लगाया गया कि उत्तरदाता-पति ने धमकी एवं दबाव देकर उसकी तनख्वाह अपने कब्ज़े में ले ली जिससे वह जीविकोपार्जन हेतु विवश हो गई। हालांकि, उत्तरदाता-पति ने अपने लिखित बयान में सभी आरोपों से इंकार किया है और यह दावा किया है कि अपीलकर्ता-वादी के पुलिस कांस्टेबल के रूप में नौकरी प्राप्त करने के उपरांत उसका व्यवहार पति एवं विवाह से उत्पन्न बच्चों के प्रति बदल गया तथा

उसने पति एवं उसके परिजनों के प्रति उपेक्षा का भाव विकसित कर लिया। उसका यह भी कहना है कि अपीलकर्ता-वादी ने बच्चों की कोई देखभाल नहीं की और न ही उन पर कोई व्यय किया। उसने यह भी आरोप लगाया कि उसने केवल तलाक का डिक्री प्राप्त करने के उद्देश्य से झूठा मामला दर्ज किया है। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि उत्तरदाता-पति के विरुद्ध लगाए गए क्रूरता के आरोप केवल सामान्य एवं अस्पष्ट प्रकृति के हैं तथा उसके साक्ष्य में किसी भी कथित क्रूरता की घटना की तिथि अथवा स्थान का उल्लेख नहीं किया गया है। यह भी पाया गया कि विवाह वर्ष 1998 में संपन्न हुआ और अपीलकर्ता-वादी ने 10 मार्च 2007 को पुलिस कांस्टेबल के रूप में नौकरी प्राप्त की तथा 19.08.2013 को तलाक हेतु वाद दायर किया। वैवाहिक जीवन से दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्होंने प्रतिवादी-पक्ष के गवाह (व. सा.-1 एवं व. सा.-2) के रूप में साक्ष्य दिया। अपीलकर्ता-वादी द्वारा दर्ज कराया गया आपराधिक मामला अभी भी न्यायालय में विचाराधीन है। दूसरी ओर, उत्तरदाता-पति ने साक्ष्य दिया कि उस पर लगाए गए झूठे आरोप केवल उसे तलाक लेकर छुटकारा पाने के उद्देश्य से लगाए गए हैं। व. सा.-1 साकेत कुमार एवं व. सा.-2 प्रियांशु कुमार, जो कि पक्षकारों के पुत्र हैं, ने यह साक्ष्य दिया कि उनकी माता द्वारा उनके पिता के विरुद्ध लगाए गए सभी आरोप असत्य हैं तथा वह उनके साथ रहना नहीं चाहतीं। उत्तरदाता-पति एवं पुत्रों का यह साक्ष्य विश्वसनीय प्रतीत होता है क्योंकि इस तथ्य से यह सिद्ध होता है कि अपीलकर्ता-वादी के पुलिस कांस्टेबल की नौकरी में शामिल होने से पूर्व पति के विरुद्ध किसी प्रकार का कोई आरोप नहीं था। साथ ही, यह भी पाया गया कि नौकरी जॉइन करने के बाद वर्ष 2007 से 2009 तक ही पति एवं बच्चे अपीलकर्ता-वादी के सरकारी क्वार्टर में लगभग दो वर्षों तक उसके साथ रहे। इसके उपरांत उसने उन्हें अपने साथ रहने की अनुमति नहीं दी, अतः उसके बाद प्रतिवादी-पति के पास उसके विरुद्ध किसी प्रकार की क्रूरता करने का कोई अवसर नहीं

था। इसके अतिरिक्त, जब दोनों पक्ष वर्ष 2007 से 2009 तक साथ रहे, उस दौरान किसी विशेष घटना का आरोप न तो वाद-पत्र में और न ही साक्ष्य में लगाया गया।

67. अतः अभिलेख पर उपलब्ध समस्त साक्ष्यों के आलोक में हम पाते हैं कि वादी/अपीलकर्ता-पत्नी द्वारा ऐसा कोई उदाहरण सिद्ध नहीं किया गया है, जिसे हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन क्रूरता की संज्ञा में, उसके कड़े अर्थ में, लिया जा सके, जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं कि अधिनियम के अंतर्गत "क्रूरता" का क्या तात्पर्य है। वादी/पत्नी, जो वर्तमान वाद में अपीलकर्ता है, उत्तरदाता-पति के विरुद्ध ऐसा कोई आचरण सिद्ध करने में विफल रही है, जिसे गंभीर एवं महत्व का माना जा सके और जो उसके मन में ऐसे खतरे की युक्तिसंगत आशंका उत्पन्न करे जिससे उसके लिए उत्तरदाता-पति के साथ वैवाहिक जीवन जारी रखना असुरक्षित हो। पक्षकारों के वैवाहिक जीवन में सामान्य उतार-चढ़ाव अवश्य रहे होंगे, परंतु उत्तरदाता-पति द्वारा अपीलकर्ता-पत्नी के प्रति किसी भी प्रकार की क्रूरता किए जाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतः यह बिंदु उत्तरदाता-वादी के विरुद्ध एवं अपीलकर्ता-प्रतिवादी के पक्ष में निर्णयित किया जाता है।

बिंदु सं. 4

68. अब, आइए हम इस बिंदु पर विचार करें। परित्याग से संबंधित इस बिंदु पर विचार करने से पूर्व, यह पुनः आवश्यक हो जाता है कि हम इस विषय पर विधिक प्रावधानों तथा न्यायालयीन दृष्टांतों को देखें।

69. परित्याग को हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(iबी) के अंतर्गत तलाक का एक आधार माना गया है। प्रावधानों के अनुसार, यदि किसी पति अथवा पत्नी द्वारा प्रस्तुत याचिका पर यह सिद्ध होता है कि विवाह में अन्य पक्षकार ने याचिकाकर्ता का लगातार दो वर्ष अथवा उससे अधिक की अवधि तक, जो याचिका प्रस्तुत करने की तिथि से ठीक पूर्ववर्ती हो, परित्याग किया है, तो विवाह को तलाक की डिक्री द्वारा विच्छेदित किया जा

सकता है। स्पष्टीकरण के अनुसार, "परित्याग" का अर्थ है – याचिकाकर्ता का अन्य पक्षकार द्वारा बिना किसी युक्तिसंगत कारण के और बिना उसकी सहमति अथवा उसकी इच्छा के विरुद्ध परित्याग किया जाना और इसमें विवाह के अन्य पक्षकार द्वारा याचिकाकर्ता की जानबूझकर उपेक्षा भी सम्मिलित है। इसके साथ ही, इसके व्याकरणिक रूपों तथा सहगामी अभिव्यक्तियों की व्याख्या भी इसी प्रकार की जाएगी।

70. बिपिनचंद्र जयसिंहबाई शाह बनाम प्रभावती एआईआर 1957 एससी 176 में **माननीय सर्वोच्च न्यायालय** ने यह प्रतिपादित किया कि स्थायित्व वह आवश्यक तत्व है जो परित्याग को केवल स्वेच्छिक पृथक निवास से भिन्न करता है। यदि कोई जीवनसाथी अस्थायी आवेश जैसे कि क्रोध अथवा वितृष्णा के कारण दूसरे जीवनसाथी को छोड़ देता है और उसका उद्देश्य स्थायी रूप से सहवास समाप्त करने का न हो तो ऐसी स्थिति परित्याग नहीं कहलाएगी। परित्याग के अपराध को सिद्ध करने के लिए, परित्याग करने वाले जीवनसाथी के संबंध में दो अनिवार्य शर्तें होती हैं: (1) पृथक्करण का तथ्य, तथा (2) सहवास को स्थायी रूप से समाप्त करने का आशय (*त्यागने की इच्छा*)। इसी प्रकार, परित्यक्त जीवनसाथी के संबंध में भी दो शर्तें आवश्यक होती हैं: (1) उसकी सहमति का अभाव तथा (2) उसका ऐसा आचरण न होना, जो परित्याग करने वाले जीवनसाथी को उक्त आशय बनाने का उचित कारण दे। तलाक की याचिका प्रस्तुत करने वाले याचिकाकर्ता पर यह भार है कि वह जीवनसाथियों से संबंधित उपर्युक्त इन दोनों तत्वों को सिद्ध करे। उसी अनुच्छेद में **माननीय सर्वोच्च न्यायालय** ने आगे यह भी कहा कि परित्याग एक ऐसा तथ्य है जिसे प्रत्येक मामले की परिस्थितियों एवं तथ्यों से अनुमान के रूप में निकाला जाता है। यह अनुमान कुछ तथ्यों से निकाला जा सकता है, जबकि दूसरे मामले में वही तथ्य ऐसा अनुमान निकालने में सक्षम नहीं हो सकते हैं। अर्थात् तथ्यों को उनके उद्देश्य की दृष्टि से देखना आवश्यक है जो उन कार्यों अथवा आचरण और आशय की अभिव्यक्ति से, चाहे वह पृथक्करण से पूर्व की हो अथवा पश्चात

की, प्रकट होती है। यदि वस्तुतः पृथक्करण हुआ है तो मुख्य प्रश्न सदैव यही रहेगा कि क्या उस कृत्य को *त्यागने की इच्छा* से जोड़ा जा सकता है। परित्याग का अपराध तब प्रारंभ होता है जब पृथक्करण का तथ्य और *त्यागने की इच्छा* दोनों सह-अस्तित्व में हो। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वे दोनों एक ही समय में प्रारंभ हों। *वास्तविक* पृथक्करण बिना *त्यागने की इच्छा* के भी प्रारंभ हो सकता है अथवा ऐसा भी हो सकता है कि पृथक्करण और *त्यागने की इच्छा* समय के एक ही बिंदु पर मेल खाते हों जैसे कि जब कोई जीवनसाथी वैवाहिक घर छोड़ देता है इस आशय के साथ, चाहे वह व्यक्त हो या निहित कि सहवास को स्थायी रूप से समाप्त कर दिया जाए।

71. **बिपिनचंद्र जयसिंहबाई शाह** (उपर्युक्त) का अनुसरण करते हुए **माननीय सर्वोच्च न्यायालय** ने ***लक्ष्मण उत्तमचंद कृपलानी बनाम मीणा*** **एआईआर 1964 एससी 40** में यह प्रतिपादित किया कि मूल रूप से परित्याग का अर्थ है एक जीवनसाथी द्वारा दूसरे जीवनसाथी का बिना उसकी सहमति और बिना उचित कारण के जानबूझकर, स्थायी रूप से त्याग और परित्याग करना। परित्याग के अपराध को सिद्ध करने के लिए परित्याग करने वाले जीवनसाथी के संबंध में दो आवश्यक तत्व होने चाहिए: (1) पृथक्करण का तथ्य , तथा (2) सहवास को स्थायी रूप से समाप्त करने का आशय (*त्यागने की इच्छा*) इसी प्रकार परित्यक्त जीवनसाथी के संबंध में भी दो तत्व अनिवार्य हैं: (1) उसकी सहमति का अभाव तथा (2) उसका ऐसा आचरण न होना जिससे परित्याग करने वाले जीवनसाथी को उपर्युक्त आशय (*त्यागने की इच्छा*) बनाने का उचित कारण प्राप्त हो। परित्याग सिद्ध होने हेतु अनुमान कुछ ऐसे तथ्यों से निकाला जा सकता है जो अन्य किसी मामले में उसी प्रकार का अनुमान उत्पन्न करने में सक्षम नहीं हो सकते हैं। अर्थात्, तथ्यों को उनके उद्देश्य की दृष्टि से देखना आवश्यक है जो उन कृत्यों, आचरण, तथा आशय की अभिव्यक्ति से प्रकट होता है, चाहे वह पृथक्करण से पूर्व की हो अथवा पश्चात की।

72. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सावित्री पांडे बनाम प्रेम चंद्र पांडे 2002 (2) एस. सी. सी. 73** के अनुच्छेद 8 में कहा है कि अधिनियम के तहत तलाक लेने के उद्देश्य से "त्याग" का अर्थ है जानबूझकर स्थायी रूप से एक पति या पत्नी को दूसरे की सहमति के बिना और उचित कारण के बिना छोड़ना। दूसरे शब्दों में यह विवाह के दायित्वों का पूर्ण खंडन है। त्याग किसी स्थान से हटना नहीं है बल्कि चीजों की स्थिति से हटना है। इसलिए, त्याग का अर्थ है वैवाहिक दायित्वों से हटना यानी पक्षों के बीच सहवास की अनुमति या अनुमति नहीं देना और सुविधा प्रदान करना। परित्याग के प्रमाण पर विवाह की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए जो कानूनी रूप से समाज में पुरुष और महिला के बीच यौन संबंध को नस्ल को बनाए रखने के लिए वैध बनाता है, अनैतिकता को रोकने और बच्चों के प्रजनन के लिए जुनून में वैध संलिप्तता की अनुमति देता है। त्याग अपने आप में एक पूर्ण कार्य नहीं है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत निर्धारित किया जाने वाला आचरण का एक निरंतर क्रम है।

73. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***देबानंदा तमुली बनाम काकुमोनी कटकी,*** **(2022) 5 एससीसी 459** के अनुच्छेद *7* में प्रतिपादित किया है कि इस न्यायालय द्वारा निरंतर स्थापित विधि यह है कि *परित्याग* का अर्थ एक जीवनसाथी द्वारा दूसरे जीवनसाथी को उसकी सहमति के बिना तथा बिना किसी उचित कारण के जानबूझकर त्याग देना है। परित्यक्त जीवनसाथी को यह सिद्ध करना होता है कि (i) पृथक्करण का तथ्य विद्यमान है तथा (ii) परित्याग करने वाले जीवनसाथी का सहवास को स्थायी रूप से समाप्त करने का अभिप्राय है। अन्य शब्दों में, परित्याग करने वाले जीवनसाथी के भीतर *त्यागने की इच्छा* की स्पष्ट मनोवृत्ति होनी चाहिए। साथ ही, परित्यक्त जीवनसाथी की ओर से सहमति का अभाव होना चाहिए तथा उसका आचरण ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे परित्याग करने वाले जीवनसाथी को वैवाहिक गृह छोड़ने का उचित कारण प्राप्त हो। इस न्यायालय द्वारा

लिया गया दृष्टिकोण अधिनियम संख्या 68, सन् 1976 द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (1) में जोड़ी गई व्याख्या में समाहित कर दिया गया है।

74. अब वादगत प्रकरण पर आते हुए हम पाते हैं कि परित्याग के संबंध में अपीलकर्ता-पत्नी ने अपने वादपत्र में यह निवेदन किया है कि उसे अपर्याप्त दहेज के कारण क्रूरता का शिकार बनाया गया और अंततः उसे वैवाहिक गृह से निकाल दिया गया। यह भी निवेदित किया गया है कि उसे उत्तरदाता-पति की ओर से किसी अनहोनी घटना की प्रबल आशंका है और वह अब उत्तरदाता-पति के साथ अपना वैवाहिक संबंध आगे बढ़ाने के लिए इच्छुक नहीं है। इन आरोपों का उत्तरदाता-पति ने अपने लिखित कथन में कड़े शब्दों में खंडन किया है।

75. पक्षकारों के साक्ष्यों पर आते हुए हम पाते हैं कि अपनी मुख्य परीक्षा में अपीलकर्ता-पत्नी ने वही कथन दोहराया है जो उसने अपने वादपत्र में किया था और जिरह के दौरान भी परित्याग के संबंध में उसके द्वारा कोई महत्वपूर्ण बात व्यक्त नहीं की गई।

76. दोनों पक्षों के साक्ष्य का अवलोकन करने के उपरांत हम पाते हैं कि तलाक याचिका दिनांक 19.08.2013 को दायर की गई है। तलाक याचिका दायर करने से पूर्व वर्ष 2007 में अपीलकर्ता-पत्नी की नियुक्ति पुलिस कांस्टेबल के पद पर भर्ती हुई थी और तब से वह अपने सरकारी आवास में निवास कर रही है। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार यह पाया जाता है कि उसने अपनी सेवा में दो वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् अपने पति एवं बच्चों को उस सरकारी आवास में रहने की अनुमति नहीं दी।

77. दूसरी ओर उत्तरदाता/पति ने निरंतर यह कहा है कि वह उसके साथ रहना चाहता है किन्तु सरकारी नौकरी प्राप्त कर वित्तीय रूप से स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् अपीलकर्ता/पत्नी का स्वभाव बदल गया है और अब वह उससे छुटकारा पाना चाहती है। अतः उसने तलाक प्राप्त करने के लिए झूठे आरोप लगाए हैं। अपीलकर्ता/पत्नी ने वैवाहिक

अधिकारों की पुनर्स्थापना हेतु हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत कोई याचिका भी दायर नहीं की है। यह परिस्थिति भी उसके प्रतिकूल जाती है और उत्तरदाता/पति के इस कथन को पुष्ट करती है कि वह विवाह को जारी नहीं रखना चाहती और केवल तलाक का डिक्री प्राप्त करने के लिए उसने झूठे आरोप लगाए हैं। हम यह भी पाते हैं कि अपीलकर्ता/पत्नी की ओर से न तो याचिका में और न ही साक्ष्य में कोई विशिष्ट कथन किया गया है कि उत्तरदाता/पति ने कब उसे उसकी सहमति के बिना और बिना किसी युक्तिसंगत कारण के सहजीवन को स्थायी रूप से समाप्त करने की नीयत से त्याग दिया था। इस प्रकार, वादी/अपीलकर्ता तलाक का डिक्री प्राप्त करने हेतु परित्याग का आधार सिद्ध करने में विफल रही है।

78. अतः, यह बिंदु भी अपीलकर्ता/पत्नी के विरुद्ध तथा उत्तरदाता/पति के पक्ष में निर्णयित किया जाता है।

बिंदु सं. 5

79. अब, हम बिंदु संख्या 5 का परीक्षण करते हैं, जो अपीलकर्ता-वादी की, पक्षकारों के बीच संपन्न वैवाहिक संबंध से उत्पन्न दो नाबालिग संतानों के संरक्षण (हिरासत) प्राप्त करने की पात्रता से संबंधित है।

80. इस संदर्भ में यह इंगित करना प्रासंगिक है कि अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि अपीलकर्ता-वादी द्वारा परिवार न्यायालय में यह वाद दिनांक 19.08.2013 को दायर किया गया था और उस समय नाबालिग संतानें, अर्थात् साकेत कुमार एवं प्रियांशु कुमार की आयु क्रमशः लगभग 12 वर्ष एवं 10 वर्ष थी। तथापि, वर्तमान समय में दोनों संतानें वयस्क हो चुकी हैं। साकेत कुमार की आयु लगभग 22 वर्ष एवं प्रियंशु कुमार की आयु लगभग 20 वर्ष है। अतः अब किसी भी पक्षकार को संतान की अभिरक्षा प्राप्त करने का अधिकार शेष नहीं रह जाता है, क्योंकि संतान की अभिरक्षा का प्रश्न केवल तभी उठता है

जब वे नाबालिग हों, किन्तु वे पहले ही वयस्क हो चुके हैं। अतः संतानों की अभिरक्षा का प्रश्न निरर्थक हो जाता है। वयस्क संतानें स्वतंत्र हैं यह निर्णय लेने के लिए कि वे कहाँ और किसके साथ निवास करना चाहती हैं।

81. अतः, हम पाते हैं कि वर्तमान अपील में कोई भी ऐसा औचित्य नहीं है जिससे विवादित निर्णय में हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक हो। परिवार न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता का वैवाहिक वाद विधिवत् रूप से निरस्त किया गया है। परिणामस्वरूप, वर्तमान अपील निरस्त की जाती है तथा विवादित निर्णय को यथावत् रखा जाता है। दोनों पक्षकार अपने-अपने व्यय स्वयं वहन करेंगे। तदनुसार डिक्री तैयार की जाए।

82. महानिबंधक को निर्देशित किया जाता है कि इस निर्णय की एक प्रति सभी पारिवारिक न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों के मध्य प्रसारित करें तथा आवश्यक कार्यवाही हेतु बिहार न्यायिक अकादमी के निदेशक को एक प्रति प्रेषित करें।

(जितेंद्र कुमार, न्यायमूर्ति)

(श्री पी.बी. भजंत्री, न्यायमूर्ति)

अमरेंद्र/चंदन/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।